ओ३म्
आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे दिल्ली
D. Sahni
भारत की महान आवश्यकता

पीड़ितों की सहायता अपनी सहायता है।
रोगियों की सेवा प्रभु की सच्ची सेवा है।।

आर्य धर्मार्थ चिकित्सालय

(विजय नगर)

आर्य कुमार सभा किंग्जवे ने जनता की सेवार्थ एक चिकित्सालय खोला हुआ है। जो २१ मार्च, १९५९ से सुचारु सुव्यवस्थित रूप से चल रहा है। अनुभवी डाक्टर श्री दयाल मेंदीरत्ता डी० एम० एच० जनता की सेवा कर रहे हैं।

जिन सज्जनों ने १० रु० या इससे अधिक दान दिया उनके नाम निम्नलिखित हैं :—

१—डा० गोकुलचन्द नारंग दिल्ली १०) मासिक
२—श्री हंसराज गुप्त नई दिल्ली १००)
३—दैनिक मिलाप, नई दिल्ली २५)
४- दैनिक प्रताप, नई दिल्ली ५०)

दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य के लिये देकर अपने धन को सफल बनाएं।

कुलदीपराज शर्मा
मंत्री

॥ ओ३म् ॥

श्रद्धा पुष्पमाला का ३९वां पुष्प

भारत की महान् आवश्यकता

लेखक—श्री कांशीराम चावला, लुधियाना

अनुवादक—कृष्णकुमार गोस्वामी, एम० ए० (हिन्दी)

प्रकाशक

आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे (रजि०)

दिल्ली—९

२० जून १९६५

प्रथम बार ११००] ७ अषाढ़ २०२२ वि० [मूल्य ५० पैसे

प्रकाशकीय

प्रभु की असीम कृपा से जनता के सम्मुख पुष्पांजलि का ६९वां पुष्प 'भारत की महान् आवश्यकता' लाते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। हमारे साहित्य की इस समय तक ६३००० प्रतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। हमारे प्रकाशन विभाग का उद्देश्य यह है कि सस्ते मूल्य में प्रिय साहित्य प्रकाशित किया जाये जो वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करे। जो पुस्तक इस समय आपके हाथों में है वह श्री कांशीराम चावला लुधियाना वासी के द्वारा उर्दू भाषा में लिखी हुई है जिसका राष्ट्रभाषा में अनुवाद श्री कृष्णकुमार गोस्वामी जी ने किया है और ब्र० जगदीश विद्यार्थी जी ने प्रूफ पढ़ा है। हम इन दोनों के इस स्नेह के प्रति आभारी हैं। यह पुस्तक बाल, वृद्ध, नवयुवक, नर-नारी, विशेषकर सरकारी पदाधिकारियों एवं राष्ट्र के हितचिंतकों के लिये उपयोगी है।

प्रकाशन विभाग का १ जून १९६४ से ३१ मई १९६५ तक का आय व्यय इस प्रकार है :—

आय		व्यय	
गत वर्ष का शेष धन	३६७३.९८	डाक व्यय	२०३.११
सदस्यता शुल्क	११९९.००	स्टेशनरी	१२८.३०
पुस्तक विक्रय	[illegible]७९-७२	पुस्तक क्रय	२०-००
दान	३४६-००	ब्लाक	११-५७
		प्रकाशन	१३६१-९८
		बैंक कमीशन	७-५०
		विविध	६९-१०
		प० नेट बैंक में	४७३४-८७
	६,४९५-७०		६,४९५-७०

जनता को कम मूल्य की पुस्तकों द्वारा साहित्य संग्रह की प्रेरणा
ने के लिये दानी महानुभावों की आवश्यकता रहती है। तदर्थ
म प्रकाशन विभाग के सदस्य बनाते हैं।

आजीवन सदस्य

जो एक बार न्यून से न्यून १००) देते हैं, उनके नाम प्रत्येक
काशन में छपते हैं। हम अपने सदस्यों की सम्मतियों का सहर्ष
गत करते हैं। हमारे आजीवन सदस्य ४५ हैं जिनके नाम इस
तक में अन्य स्थान पर दिये गये हैं।

साधारण सदस्य

जो न्यून से न्यून दस रुपये वार्षिक देते हैं उनके नाम वर्ष में एक
प्रकाशित किये जाते हैं।

—श्री शांति स्वरूप, उषा कम्पनी, दरिया गंज, दिल्ली।
—श्री सुभाष चन्द्र आर्य, ए-६२, हडसन लाइन, किङ्ग्जवे, दिल्ली।
—श्री खेतू राम विशम्भर दास गीदड़ बाह।
—श्री मंत्री, आर्य समाज यमुना नगर (अम्बाला)।
—श्री प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कालेज, अबोहर।
—श्री हुकुम चन्द, पंजाब नेशनल बेंक, दिल्ली।
—श्री दर्शन लाल सचदेव, हंसराज कालेज, दिल्ली।
—श्री मंत्री, आर्य समाज, धुरी।
—श्री हे० रा० कार्णिक, महर्षि दयानन्द कालेज, परेल, बम्बई-१२
—श्री प्रेम प्रकाश मंत्री, आर्यसमाज, ब्रह्मपुरी, मेरठ।
—श्रीमती शशि बाला, तिलक नगर, नई दिल्ली-१८।
—श्रीमती दमयन्ती देवी, नवाब गंज, दिल्ली।
—श्री महात्मा ज्ञान भिक्षु, तपोवन आश्रम, देहरादून।

शेष सदस्यों से प्रार्थना है कि अपना शुल्क शीघ्र भेजने का कष्ट करें। आप से प्रार्थना है कि अधिक संख्या में हमारा साहित्य प्रचारार्थ मंगाकर व तत्प्रोत्साहनार्थ हमारे सदस्य बन कर सहयोग दें। धन्यवाद।

जगमाल सिंह तंवर
प्रकाशन मंत्री

आचार्य धर्मवीर आर्य
आर्यवीर दल मुम्बई
9029421718.

अनुवादक की ओर से

आज भारत में हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाया जा रहा है तथा इसे समृद्ध एवं प्रगतिशील बनाने का एक यह भी उपाय है कि अन्य भाषाओं की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया जाये। किसी भी कृति का अनुवाद करना यदि कठिन नहीं तो सहज कार्य भी नहीं है। किसी भी भाषा को आत्मा को समझ कर उसे अन्य भाषा में ज्यों का त्यों अवतरित करना उसी प्रकार दुस्साध्य है जिस प्रकार एक आत्मा का स्वशरीर त्याग कर दूसरे शरीर में प्रवेश करा देना। हाँ, यह कार्य कठिन भी नहीं यदि अनुवादक सतर्कता, सावधानी तथा चातुर्य से मूल रचना का अनुवाद करता है।

श्री कांशीराम चावला जी ने इस रचना को उर्दू भाषा में साप्ताहिक "रिफार्मर" में "इस वक्त भारत की सबसे बड़ी ज़रूरत क्या है" के नाम से प्रकाशित करवाया था। इसमें चावला जी ने भारत की वर्तमान परिस्थिति पर पूर्ण प्रकाश डाला है तथा यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि इस स्थिति में भारत उन्नति की ओर न जाकर अवनति की ओर जा रहा है। देश सुधार सम्बन्धी विचारों को पढ़कर आर्य कुमार सभा किङ्ज़वे के प्रकाशन विभाग ने इसे हिन्दी में प्रकाशित कराने की योजना बनाई तथा इसका अनुवाद करने का कार्य मुझे सौंपा गया। व्यस्त रहने के कारण मैं इस रचना को पूर्ण समय नहीं दे सका, परन्तु फिर भी सभा संस्थापक श्री इक-

बाल राय जी की प्रतिदिन की प्रेरणा के कारण इस रचना का उक्त अनुवाद करने का प्रयास किया है। मैं श्री इकबाल राय जी का अति आभारी हूं जिनके असीम स्नेह तथा प्रेरणा से यह कार्य शीघ्र सम्पन्न हो पाया है।

इस कृति के अनुवाद करने में मैं कहाँ तक सफल हो पाया हूं, यह निर्णय तो आप ने ही करना है । हाँ अन्त में मेरी यह अभिलाषा है कि रचना के स्वाध्याय से यदि एक व्यक्ति का भी सुधार हुआ तो मैं श्री चावला जी के तथा अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

८७ वी, औट्रम लाईन्ज़,
किङ्ग्ज़वे, दिल्ली-६ ।

कृष्ण कुमार गोस्वामी

सच्ची शिक्षा

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपने जीवन काल में इस बात को कई बार कहा और आज भी अन्य नेता अनेक बार यह कह चुके हैं कि देश को इस समय वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की बड़ी आवश्यकता है। पाश्चात्य देशों ने आज जो आश्चर्यजनक प्रगति की है, उन की तुलना में भारत केवल स्वतंत्रता प्राप्त करने के अतिरिक्त एक पिछड़ा हुआ देश है। इसका कारण यह है कि उन देशों में विशेषज्ञों का आधिक्य है और हमारे देश में अत्यधिक अभाव। परिणाम स्वरूप आज हमें अन्य देशों की सहायता तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती रहती है। अपने देश की रक्षा के हेतु हमें अस्त्र-शस्त्रों के लिये विदेशों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है और इन शस्त्रों का प्रशिक्षण भी विदेशी विशेषज्ञों की सहायता से लेना पड़ता है। इस प्रकार हमें अपने युवकों को प्रशिक्षण लेने के लिये विदेशों में भेजना पड़ता है। इसी कारण यह कहा जाता है कि अपने देश में ही वैज्ञानिक एवं इंजीनियर अधिक संख्या में उपलब्ध हो जायें तो हमें अन्य देशों का मुख नहीं देखना पड़ेगा।

दूसरी बात यह भी कही जाती है कि यह कोई गौरव की बात नहीं कि हम दोनों बड़े गुटों के देशों से सहायता ले रहे हैं क्योंकि हम ने अपने को पृथक् रखकर किसी एक गुट के साथ सम्बन्ध नहीं रखा। हां यह धारणा सराहनीय है परन्तु वास्तविक गौरव की बात तो यह होगी कि हम सभी प्रकार से आत्मनिर्भर हो जायें तथा आत्मनिर्भर होने के लिये प्रत्येक क्षेत्र में कला-विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है।

इसी कारण इस अभाव की पूर्ति के लिये हमारे देश में बहुत से नये महाविद्यालयस्थापित किये जा रहे हैं ताकि हम शीघ्रातिशीघ्र आत्म-निर्भर हो सकें और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सकें।

निस्सन्देह वर्तमान परिस्थिति में हमें वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की नितांत आवश्यकता है और इसकी पूर्ति के लिये हमें प्राण पण से प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता अपितु सर्वाधिक आवश्यकता एक अन्य वर्ग की है जिसके बिना इंजीनियरों एवं वज्ञानिकों की उपलब्धि होने पर भी हम प्रगति की ओर नहीं बढ़ सकते।

प्रश्न उठता है कि वह कौन सा ऐसा वर्ग है जिसकी इतनी अधिक आवश्यकता है। इस विषय में इस वर्ग का बतलाना ही मेरा लक्ष्य है और वह वर्ग है सच्चे मानव का। बड़ी २ डिग्रियाँ पाये हुए व्यक्ति का नहीं अपितु सही अर्थों में मानव का।

एक समय था जब इस देश में ऐसे लोगों की ही अधिकता थी और विदेशी लोग इन लोगों के दर्शनार्थ यहाँ आया करते थे और इनके चरणों में बैठ कर सच्ची मानवता की शिक्षा लेकर उसी के आधार पर अपने देश में सच्चे मानवों का निर्माण करते थे। परन्तु आज की स्थिति ही निराली है—

मर्दों से गो कि बस्ती भरी है
वले देखने को न इंसां कहीं है।

(अर्थात् यह देश आज पुरुषों से भरा हुआ है परन्तु मानव के कहीं भी दर्शन नहीं होते।)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी सरकार सैनिक स्कूल खोल रही है। मैडिकल तथा इंजीनियरिंग कालिज भी धड़ाधड़ खुल रहे हैं परन्तु मानव बनाने वाले अर्थात् मानवता की शिक्षा देने और उसके कर्तव्य

एवं उत्तरदायित्व सिखाने के लिये न कोई शिक्षाकेन्द्र है, न कोई प्रयोगशाला खोली गई है तथा न इस बात की ओर ध्यान दिया जा रहा है। परिणाम यह होगा कि हमें डाक्टर, इंजीनियर तथा सैनिक तो पर्याप्त मात्रा में मिलने प्रारम्भ हो जायेंगे परन्तु वे होंगे केवल आदमी ही, मानव नहीं। वे मानवता से पूर्णतया अनभिज्ञ होंगे।

आदमी और मानव में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। इसी लिये कहा गया है—

आदमी तो आप हैं ही, इसमें क्या शक है
मगर दो घड़ी के वास्ते इंसां बनकर देखिये।

हमारे नेता देश की प्रगति के लिये इस समय जिन वर्गों की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं, मान लिया जाये कि वह किन्हीं अंशों में पूर्ण भी हो जाती है किन्तु इसके साथ यदि देश में मानवता की कमी को दूर न किया गया तो कम से कम मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारा राष्ट्रीय वातावरण जो बहुत सीमा तक अंग्रज़ी सभ्यता और अंग्रेजी शिक्षा से दूषित हो गया था और स्वतन्त्रता का अनुचित अर्थ लगा कर हमने उसको और भी अधिक दूषित कर लिया है। यह भी सम्भावना है कि भविष्य में वह इतना दूषित हो जायेगा कि इसे संभालना भी हमारी शक्ति से परे हो जायेगा।

आज हम देखते हैं कि बड़े २ वेतन पाने वाले इंजीनियर, एस० डी० ओ०, ओवरसीयर आदि जो अपनी कला के पूर्ण ज्ञाता है परन्तु मानवता के अभाव के कारण दुष्कर्म करने से कानून के बंधन में आ रहे हैं। पुल और बांध आज बनते हैं परन्तु कल एक ही प्रवाह में बह जाते हैं। केवल यही नहीं अपितु बांध बनाये तक नहीं जाते परन्तु कागजों में दिखाया जाता है कि बांध बने और बाढ़ में बह गये। अब तनिक सोचिये कि ऐसे इंजीनियर राष्ट्र का क्या हित करेंगे? देश

का लाखों रुपया इस प्रकार नष्ट किया जा रहा है। निर्धन जनता से करों के रूप में प्राप्त किया हुआ धन इस प्रकार से बेईमान विशेषज्ञों की तिजोरियों में पहुच रहा है। इस प्रकार से कितने ही डाक्टर प्रभावहीन औषधियाँ तयार करके रोगियों के जीवन से खेल रहे हैं।

यह ठीक है कि स्वतंत्रता के पश्चात् कई लोग लखपति बन गये परन्तु प्रश्न उठता है कि वे लखपति किस प्रकार बने हैं? स्पष्ट दिखाई देता है कि मानवता से गिरे हुए उपायों का प्रयोग कर के, छल और कपट से, ब्लैक मार्कीट से तथा अनुचित मुनाफाखोरी से, करों के चुकाने में बेईमानी कर के वे लोग सरकारी कर्मचारियों के षड़यन्त्र और कृपा से धनी बने हैं।

ऐसे डाक्टरों, ऐसे इंजीनियरों और ऐसे धनिकों से देश को लाभ के स्थान पर हानि पहुँची है क्योंकि रिश्वतखोरी प्रत्येक विभाग में इतनी सीमा तक बढ़ गई है कि कोई भी कार्य किसी न किसी रूप में रिश्वत लिये बिना करवाना न केवल कठिन है अपितु असम्भव हो गया है. आज कार्य करवाने के लिये केवल दो उपाय रह गये हैं— रिश्वत तथा अनुशंसा (सिफारिश)। इन दो उपायों के बिना किसी भी विभाग में कोई कार्य नहीं हो सकता।

ऐसा क्यों है? इसलिये कि मानवों का अभाव है अर्थात् मानवीय भावना लुप्त हो गई हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सभी प्रकार के व्यभिचार तथा दुराचार बड़े वेग से बढ़ रहे हैं। मद्यपान, मांसाहार, जुआबाज़ी, भ्रष्टाचार, बेईमानी, छल कपट, जालसाज़ी आदि जितनी बुराइयां हैं, वे कई सौ गुना अधिक बढ़ गई हैं।

सरकार इन बुराइयों का नियन्त्रण तथा सुधार करने के लिये नये नये विभाग स्थापित करती है जिससे बजट में व्यय की बढ़ोतरी होती है, परन्तु वे नये विभाग स्वयं इन बुराइयों के गर्त जा पड़ते हैं।

घूसखोरी में भागीदारों की संख्या बढ़ती जा रही है तथा इस प्रकार स्थिति निरन्तर अधमतम रूप धारण करती जा रही है। इस का कारण यह है कि शिक्षित तथा विशेषज्ञ भी इस बुराई में फंसे हुए हैं। अतः केवल शिक्षा और कलात्मकता कुछ नहीं कर सकती जब तक उस शिक्षा और कला में मानवता का पुट नहीं होगा। इसीलिये कहा गया है—

यों तो पढ़ लेता है तोता भी 'आइये गंगाराम जी'।
वले आदमी होता है इन्सां बड़ी मुश्किल से।

मानवता ही तो वह वस्तु है जिससे सभी कार्य व्यस्थित होते हैं और देश अथवा राष्ट्र का सुधार हो सकता है। एक उर्दू कवि का कथन है—

"इन्सानियत ही तो बुनियाद है हर खुदी की
हो न यह भी तो धरा क्या है आदमी के पास।"

(अर्थात् मानवता ही प्रत्येक आत्मभाव की नींव है यदि यह न होती तो मनुष्य के पास कुछ भी न होता।)

इस समय तो स्थिति ऐसी है कि हमारा पासा ही पलट गया है। हमारी दृष्टि हो परिवर्तित हो गई है। हमें देश तथा राष्ट्र के साथ किंचित् मात्र भी प्रेम नहीं। हमारी जाति के जो निर्माता हैं, उन पर किसी उर्दू कवि की यह उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है—

यह खिलाफ़ हो गया आसमां
यह हवा जमाना की फिर गई
कहीं गुल खिले भी तो बू नहीं,
कहीं हुस्न है तो वफ़ा नहीं॥

(अर्थात् आकाश भी विद्रोही हो गया है और इस युग का वातावरण भी बदल गया है। यदि कहीं पुष्प खिले हुए हैं तो उनमें सुगन्धि नहीं तथा यदि कहीं सौन्दर्य है तो उसमें विश्वास की गंध नहीं।)

यथा राजा तथा प्रजा

हमारे अनेक बन्धुओं का कथन है कि जब तक उच्च वर्ग के लोग र्थात् मन्त्री अथवा पदाधिकारी आदि अपना दृष्टिकोण न बदलेंगे था अपने कर्तव्य को नहीं समझेंगे और ईमानदारी तथा निष्कपटता पूर्ण न होंगे तब तक निम्न वर्ग के लोगों से भला बनने की आशा नहीं ी जा सकती। इन का यह कथन बहुत अंश तक उचित है। ह कथन बहुत अंश तक उचित है क्योंकि यह उदाहरण प्रसिद्ध है— "यथा राजा तथा प्रजा।"

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि ष्ठ वर्ग जो जो आचरण करता है, अन्य वर्ग उसके अनुसार ही यवहार करते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसके अनुसार कार्य करते हैं ❀

मानव जीवन का लक्ष्य बताते हुए एक उर्दू कवि ने बहुत सुन्दर उक्ति कही है :—

> दो ही काम हैं यहाँ इन्साँ के आन कर,
> दुनिया में भला होना, दुनिया का भला करना।

दुर्भाग्यवश भारतवासियों ने इस युग में इन दोनों बातों को विस्मृत कर दिया है। वर्तमान पीढ़ी को न तो भला बनने का विचार है और न भला करने का, अपितु श्रेष्ठ और निम्न वर्ग दोनों ही विपरीत मार्ग पर चल रहे हैं। सर्वत्र गुंडागर्दी का साम्राज्य बढ़ रहा

❀ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

गीता ॥१३॥२१॥

है और सुना जाता है कि जब गुंडों की गुंडागर्दी समाप्त करने के लिए कोई उपाय अपनाया जाता है तो उच्च वर्ग के लोग उन के लिये आगे आ खड़े होते हैं क्यों कि वही गुंडे भ्रष्टाचार में इन उच्च वर्ग के लोगों को सहायता करते हैं, चुनाव के समय इनके काम आते हैं। भला ऐसी दशा में कैसे सुधार हो सकता है ?

उच्चवर्ग के लोगों को तो स्वयं सज्जनता, ईमानदारी का आदर्श स्थापित करना चाहिये न कि गुंडों को अपना हथियार बना कर गुंडागर्दी को प्रोत्साहन करने का। यह सत्य ही कहा गया है —

संतरी ही चोर हो तो कौन रखवाली करे
उस बाग का क्या हाल जिसका माली ही पामाली करे।

देश का सुधार तभी हो सकता है और जनता मानवता के मार्ग पर तभी अग्रसर हो सकती है जब उच्च वर्ग के लोग सन्मार्ग को अपनायें। परन्तु वर्तमान समाज में इस प्रकार की आश रखना कल्पनामात्र अर्थात् दिवास्वप्न देखना है। चाहे वे लोग उच्च वर्ग के हों अथवा निम्न वर्ग के, वे हैं तो वर्तमान समाज के, जिन पर इस समय अनुचित कार्य करने का और भ्रष्टाचार करने का भूत सवार हो गया है तथा वे मानवता को तिलांजलि दे चुके हैं। सज्जनता का दिवाला पिट चुका ईमानदारी को दूर से नमस्कार कर दिया गया है और सच्चरित्रता का बहिष्कार हो चुका है।

सारांश यह है कि सारे भण्डार को ही घुन लग चुका है और चाहे जिधर से गेहूं निकालो, वह खराब ही निकलेगा। जो मंत्री बने हैं अथवा और ऊंचे पदों पर हैं, वे कोई आकाश से तो नहीं टपके अपितु वर्तमान जाति और अथवा समाज से ही तो आये हैं। दाग़ी कपड़े का टुकड़ा, जहाँ से भी लोगे, वह दागी ही होगा। अतः जब सारे समाज का आकार ही बिगड़ गया हो तो इसमें सच्चे मानव की खोज करना तथा प्राप्त करने की आशा करना एक मृग-मरीचिका

से अधिक नहीं है। अतः इन परिस्थितयों में उच्च वर्ग के लोगों से सुमार्ग पर चलने की आशा करना व्यर्थ है।

इसका अर्थ यह नहीं कि सच्ची मानवता मूल रूप से समाप्त हो गई है। ऐसा न कभी होगा और न कभी हो सकता है क्योंकि यदि मूल ही न रहा तो किसी प्रकार के सुधार की आशा भी नहीं की जा सकती। परन्तु वास्तविकता यह है कि जो सही अर्थों में मानव हैं वे आटे में नमक के समान भो नहीं है और वे वर्तमान वतावरण से दुःखी तथा निराश होकर एक ओर बैठ गये हैं। वह तो अपनी आवाज को समझने लगे हैं जिसे नक्कार खाना में कोई नहीं सुनता।

ऐसे लोगों में कुछ लोग तो यह सोचते हैं कि यदि ईश्वर को ऐसा स्वीकार है और उसने वर्तमान को उसके पापों का दण्ड देना हो है तो इसमें हम क्यों हस्ताक्षेप करें। कुछ लोगों की यह धारणा है कि वर्तमान पीढ़ी को जब अपने दुष्कर्मों के कारण धक्के लगेंगे, ठोकरें लगेंगी और वे गिर कर अपना सिर मुँह तुड़वायेंगे तब वे स्वयं ही संभल जायेंगे। जिस प्रकार एक बालक अग्नि में हाथ जलाकर उससे दूर रहने का प्रयास करता है जबकि समझाने बुझाने से नहीं अपितु समझाने से वह यह समझता है कि उसकी स्वतंत्रता में हस्ताक्षेप किया जाता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे लोग जो मानवता से अलंकृत हैं, वे वास्तव में मानव कहलाने के अधिकारी हैं, परन्तु ऐसे लोग बहुत ही कम मिलते हैं। क्योंकि दुर्भाग्य से इस समय सारे वन को ही आग लगी हुई है।

इस प्रसग में यदि कुछ आशा की जा सकती है तो साधु महात्माओं से। परन्तु इनमें से कई तो राजनैतिक क्षेत्र में घुस कर अपना महात्मापन खो बठे हैं। कई ढोंगी बन कर जनता को न केवल मार्ग

भ्रष्ट कर रहे हैं अपितु भ्रष्टाचार भी फैला रहे हैं। सच्चरित्रता की शिक्षा देने के बजाय जनता को अनाचार के गर्त में गिरा रहे हैं। इस के विस्तार में जाना उचित प्रतीत नहीं होता परन्तु जनता को इस विषय में सावधान रहना चाहिये।

साधु महात्माओं में भी ऐसे लोग हैं जो सच्चे मानव हैं परन्तु ढोंगी और सब्ज बाग दिखाने वाले साधुओं ने ऐसी धांधली मचा रखी है कि सच्चे साधु भी यह कह कर पृथक् हो गये हैं – "जो तुध भावे साईं भली कार।"

कई संस्थाए तो व्यक्ति को मानव बनाने के लिये स्थापित की गई है परन्तु इनमें ऐसे तत्व आ गये हैं कि आत्मशान्ति का उद्देश्य ही लुप्त हो गया है और इन संस्थाओं का मौलिक उद्देश्य भी समाप्त हो गया है।

इन संस्थाओंमें प्रथम तो राजनीति को लाया गया है। दूसरे इनमें स्वार्थी, पद-लोलुप, यश एवं प्रसिद्धि के इच्छुक तथा अवसरवादी लोग आ गये हैं। अतः इसी कारण भले लोग इनमें सम्मिलित होना पसन्द नहीं करते क्योंकि वहां जाकर कोई उचित सुझाव दें भी तो न केवल उन की हंसी उड़ाई जाती है अपितु उनको बाहर निकाल कर उन का अनादर भी किया जाता है। भला ऐसी दशा में कौन वहां जाकर अपमानित हो। सच्चरित्र लोग दुश्चरित्र लोगों के मार्ग में बाधक होते हैं. इसलिये भले लोगों का उन में सम्मिलित होना सहन नहीं किया जाता। ऐसे स्थिति में सज्जन पुरुष अपनी स्थिति में रहना उचित समझते हैं। इन के विषय में एक उर्दू कवि ने कहा है—

"वे हैं मतलब के बन्दे और यां ख़ुदा का नाम है"

अब तो सज्जन लोग भी यह कह कर तटस्थ हो गये हैं—

'या करो नस्ब नामा वह वक्त आया है अब।
बे असर होगी शराफ़त माल देखा जायेगा।

(अर्थात् अब तटस्थ रहना ही अच्छा है क्योंकि ऐसा समय आ गया है जिसमें सज्जनता प्रभावहीन हो गई है तथा धन का मान बढ़ गया है।)

अतः धार्मिक संस्थाओं का इस ओर ध्यान ध्यान देना चाहिये कि वे अपने सदस्यों की संख्या बढ़ाने में अपनी संस्थाओं के वातावरण को दूषित न करें। जब एक गंदी मछली ही सारे सरोवर को गंदा कर देती है फिर जहाँ भीड़ ही लग जाये वहाँ का क्या ठिकाना।

भ्रष्टाचार

मानवता से शून्य बड़े २ विशेषज्ञ स्वार्थ और लोभ के शिकार हो कर देश अथवा राष्ट्र को लाभ पहुंचाने के बजाय हानि पहुँचाते हैं। वे ऐसे स्थानों पर भी अनाचार का प्रदर्शन करते हैं जहाँ जनता के जीवन-मरण का प्रश्न होता है तथा जहां पवित्र उद्देश्य कार्य होता है।

कई बांध और पुल घटिया मसाला लगाकर बनाने और इस प्रकार से राष्ट्र तथा देश का धन हड़पने के कई प्रसंग आप पढ़ चुके होंगे अपितु आपने यह भी सुना होगा कि कई स्थानों पर कुछ भी न बना कर काम का होना दिखा कर बड़ी २ पूंजी डकार ली गई है। समाचारपत्रों में एक उल्लेख आया था कि शेरे-पंजाब लाला लाजपतराय के जन्मस्थान 'ढुढेके' में उनकी स्मृति में एक स्मृति-भवन का निर्माण किया गया। इस स्मृति-भवन में जितने स्तम्भ बनाये गये, उनमें कोई लोहे की शलाका नहीं थी परन्तु फाइलों में दिखाया गया कि उन में लोहे की शलाकें भरी गई हैं। किसी पदच्युत मिस्त्री ने सूचना दी कि उन में लोहे की शलाकें तो क्या सुई तक भी नहीं हैं और लोहे की शलाकों का मूल्य बिलों में लिखा गया है। अतः इस बात को जांच-पड़ताल करने के लिये एक दो स्तम्भ गिराये गये तो उस मिस्त्री की सूचना अक्षरशः सत्य निकली।

अब तनिक ध्यान दीजिये कि जिस देश भक्त ने देश और राष्ट्र के लिये अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया, उसकी स्मृति स्थापित की जा रही है परन्तु उस में भी भ्रष्टाचार को लाया गया है। यह सुन कर हृदय विदीर्ण होने लगता है। जो लोग इस प्रकार की बुराईयों में ग्रस्त हो रहे हैं उनको स्मरण रखना चाहिये कि उन का यह भ्रष्टाचार उन की सहायता में नहीं आयेगा। उन्हें न कभी शांति प्राप्त होगी तथा न कभी सम्मान ऐसे लोगों के लिये कहा गया है—

तहरीक गुनाह से न गुम हो जाना।
अफ़आल स्याह से न गुम हो जाना।।
खुद अपनी ही कदर अगर नहीं कर सकते।
इज्जत से जिन्दगी बसर कर नहीं सकते।।

(अर्थात् दोषों के गर्त में लिप्त न होना तथा दुष्कार्यों में स्वयं को नहीं खोदेना चाहिये। यदि वे अपना सम्मान स्वय नहीं कर सकते तो अपना जीवन आदर और म न से व्यतीत नहीं कर सकते।)

जो लोग अपनी मान-मर्यादा का ध्यान नहीं रखते तथा धन के लोभ में उसका गला स्वयं घोट देते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि

ऐसे जीने से तो है डूब के मरना बेहतर।
आबरू जिसकी न हो, वह कोई इन्सान हो नहीं।।

उन्हें यह बात हृदय पर नोट कर लेनी चाहिये कि सम्मान वह वस्तु है जो एक बार चली जाने पर फिर हाथ में नहीं आ सकती। अतः यह कहा गया है—

पा सकता है जो जर लुटाये कोई।
क्या पायेगा जो आबरू गंवाये कोई।।
बिखरे मोती तो सिमट सकते हैं।
टपके हुए अश्क क्या उठाये कोई।।

(अर्थात् धन लुटाने वाला व्यक्ति अपना धन प्राप्त कर सकता है परन्तु जिसका सम्मान समाप्त हो गया उसे फिर प्राप्त नहीं कर सकता। बिखरे हुए मोती तो एकत्रित किये जा सकते हैं, परन्तु गिरे हुए अश्रु नहीं उठाये जा सकते।)

हाँ यह तो एक प्रासंगिक बात थी। अब हम अपना बात पर आते हैं कि भारत को इस समय सच्चे मानव की सर्वाधिक आवश्यकता है। कई सज्जन लोगों की धारणा है कि युग परिवर्तित हो रहा है। संसार एक होने वाला है। विश्वमें एक होराज स्थापित हो जायेगा

तो उसमें यह दुराचार भी समाप्त जायेगा तथा वातावरण स्वयं सुधर जायेगा। आशावादी होना बड़ी अच्छी बात है। मैं स्वयं निराशा के पक्ष में नहीं हूं और इस मत का सदा से समर्थन करता आया हूं कि 'जब तक सांस तब तक आस।' परन्तु आशा भी तो परिस्थिति के अनुसार करनी चाहिये और फिर यह सोचना कि हम कुछ न करें और बिगड़ी बात स्वयं ही सुधर जाये। यह उनकी बड़ी भूल है। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे बिल्ली के आने पर कबूतर अपने नेत्रों को बंद कर लेता है और समझता है कि अब मुझे बिल्ली दिखाई नहीं देती और न बिल्ली को मैं दिखाई देता हूं। अतः अब मुझे कोई भय नहीं है।

यह भी कहा जाता है कि आज दूरी का प्रश्न समाप्त हो गया है क्योंकि वायुयान इतनी तीव्र गति से उड़ान भरते हैं कि कुछ ही घंटों में संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंचना कठिन नहीं है। दूसरा, कोई घटना संसार के किसी कोने में हो रही हो अथवा हुई हो उसकी सूचना पलों और सकिन्डों में रेडियो के द्वारा संसार भर में पहुंचाई जा सकती है। छापाखाना, टेलीप्रिंटर द्वारा एक स्थान की सूचना दूसरे स्थान में कुछ ही समय में पहुंचाई जा रही है। ये सभी प्रगति के लक्षण हैं। इन्होंने संसार को एक कर दिया है। अतः वातावरण में परिवर्तन होगा तथा सभी बुराइयों एवं कुरीतियों का भी विनाश हो जायेगा।

ईश्वर की कृपा से इन सज्जनों की यह धारणा सच्ची निकले और वातावरण सुधर जाये। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों को देखने से मैं इस धारणा और आशा को मानसिक कल्पना से अधिक नहीं समझता। प्रश्न उठता है क्यों ? जिस संसार के एक होने की आशा रखी जा रही है वह संसार आज के मनुष्यों से बना हुआ है तथा हम

देखते हैं कि आधुनिक मनुष्य दिन प्रति दिन अधिक क्रोधी, लोभी, धूर्त, भयानक, क्रूर, विलासी, कामी, स्वार्थी, भौतिकवादी, अत्याचारी एवं स्वच्छन्द होता जा रहा है तो ऐसे व्यक्तियों से निर्मित संसार में एकता, प्रेम, भलाई, सद्भावना की आशा रखना शेखचिल्ली के दिवास्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रेम एवं स्नेह का राज्य, जिसे रामराज्य भी कहा जा सकता है, तभी स्थापित हो सकता है जबकि वर्तमान समाज की भावनाएं एक दम बदल जायें, जिस प्रवाह में हम बहे जा रहे हैं, वह प्रवाह अपना मार्ग बदल दे।

यहां ध्यान देने की बात यह है कि वर्तमान वातावरण अकस्मात् किस प्रकार बदल सकता है। यह भी एक वास्तविक सत्य है कि जो राष्ट्र अपनी परिस्थिति को बदलने का उपाय न सोचे, उस के लिये कोई सुझाव न अपनाये, उस की दशा कैसे बदल सकती है। यह सिद्धांत सर्वमान्य है कि ईश्वर भी उसी मनुष्य अथवा जाति की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। भला यह कैसे हो सकता है कि हम हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहें और हमारा नरक स्वर्ग में परिवर्तित हो जाये। अतः इसी कारण हमें इस धारणा को कोई महत्त्व नहीं देना चाहिये।

कई लोगों का विचार है कि संसार के एक कोने की सूचना दूसरे कोने में तत्काल ही पहुच जाती है, इससे भी स्थिति में सुधार हो सकता है। मैं इस विचारधारा की कोई महत्ता नहीं समझता अपितु मैं तो समझता हूं कि उससे लाभ न होकर हानि होगी। परिस्थितियां सुधरने की बजाय बिगड़ती जायेंगी। प्रश्न उठता है किस प्रकार ? आपने समाचारपत्रों में पढ़ा होगा कि इङ्गलैंड में चौदह सशस्त्र दस्युओं ने एक मेल ट्रेन पर डाका मारा। लाखों करोड़ों रुपये लेकर चम्पत हो गये। वे सभी व्यक्ति अभी तक नहीं पकड़े जा सके और न ही धन की प्राप्ति हुई है। अब बताइये कि इस सूचना के तत्काल आ

जाने से तथा संसार के कोने कोने में समाचारपत्रों में प्रकाशित होने पर वातावरण सुधरेगा अथवा बिगड़ेगा । पहले इन देशों में बैंकों के लूटने को सूचनाएं निकलती थीं तो यहाँ भो उसी प्रकार की घटनाए होने लगी । अब रेल के लूटे जाने की सूचना प्रकाशित हुई है तो यहाँ भो डाकू इस प्रकार के डाके डालने की योजनायें बनायेंगे ।

एक अन्य सूचना प्रकाशित हुई थी कि एक २८ वर्षीय नवयुवक तथा १८ वर्ष की नवयुवती प्रणयसूत्र में बधने के लिये प्रस्तुत हुए परन्तु युवतो के माता पिता ने इसे स्वीकार नहीं किया । तत्पश्चात् दोनों का विवाह अन्य स्थानों में हो गया । उनके पुत्र-पुत्रियाँ हो गये । नाती पोते हो गये । समयानुसार दोनों के सगे-सम्बन्धी स्वर्गवासी हो गये । साठ वर्ष के पश्चात् अकस्मात् ही दोनों का किसी स्थान पर मिलन हो गया तथा उनके मस्तिष्क में विवाह का पूर्व सकल्प स्मरण हो आया । अतः दोनों ने ८८ वर्ष तथा ७८ की आयु में विवाह कर लिया । अब आप स्वयं समझ सकते हैं कि इस सूचना के पढ़ने से ब्रह्मचर्य का प्रचार होगा अथवा काम वासना का ।

इजरायल के सर्वोच्च न्यायालय ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है कि नवयुवकों का नवयुवतियों से ऐसा परिहास करना जिस में सौन्दय की प्रशसा हो, कोई अपराध नहीं है । इस सूचना को पढ़कर राष्ट्र के चरित्र का निर्माण होगा या वह बिगड़ेगा ।

इन सभी घटनाओं की चर्चा करने का मेरा केवल यही उद्देश्य था कि संसार की इस काल्पनिक एकता से वातावरण के सुधरने की काई आशा दिखाई नहीं देती ।

सुख एवं शांति

पर्याप्त मात्रा में पश्चिमी शिक्षा तथा पश्चिमी सभ्यता से हमारी सभ्यता पर कुल्हाड़ी चली है, परन्तु इसमें अधिकतर दोष हमारा ही है क्यों कि हमने पश्चिम की कोई भी अच्छी बात नहीं अपनायी अपितु बुरी बातों का ही अनुकरण किया है। हमने स्वतंत्रता का अनुचित अर्थ लिया है। हम ने मनमानी करना ही स्वतंत्रता समझा जिसका फल यह हुआ कि हमने लगभग मानवता का गला घोंट दिया है।

प्रथम जुलाई १९६३ के दिन कलकत्ता में हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने अपने भाषण में कहा था कि भारतीय जनता ने सोचना छोड़ दिया है। परन्तु उनका यह कथन मानव स्वभाव के विपरीत लगता है। यह कभी न हुआ है और न हो सकता है कि मनुष्य सोचना छोड़ दे क्योंकि जब तक मनुष्य के साथ उसका मन है, वह सोचे बिना रह ही नहीं सकता। मानसिक प्रकृति का दूसरा नाम ही संकल्प-विकल्प है। हां, देखने वाली बात यह है कि आधुनिक मनुष्य सोचता क्या है ? इस बात का पता लगाना कोई कठिन कार्य नहीं है। क्यों कि मनुष्य का कार्य और स्वभाव उस के विचारों का ही परिणाम होता है। वर्तमान मनुष्य के कार्यों मे हम जान सकते हैं कि वह क्या सोचता है। इस बात का निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि इस समय का मनुष्य जो कुछ सोचता है, वह मानव के रूप में नहीं, अमानव के रूप में ही सोचता है।

दो जानवरों के सम्मुख कोई खाद्य वस्तु फेंक दो तो दोनों ही उसे प्राप्त करने के लिये सोचेंगे तथा एक दूसरे का ध्यान न रखते हुए उसी समय उस वस्तु पर झपट पड़ेंगे। बस आज का मनुष्य भी इसी ढग से सोचता है। उसकी सदैव यही इच्छा होती है कि मैं अपने घर में प्रत्येक वस्तु डाल लूँ। काम आने वाली प्रत्येक सुन्दर वस्तु पर अपना अधिकार जमा लूँ। इसे न दूसरों की आवश्यकता का ध्यान है, न देश और राष्ट्र के हित का विचार।

यह बात शतप्रतिशत ठीक है कि आधुनिक युग विज्ञान और तकनीकी का युग है। परन्तु देखना यह है कि क्या केवल विज्ञान एवं तकनीकी की प्रगति से हम सुखी हो सकते हैं तथा क्या देश में इस के द्वारा शांति स्थापित हो सकती है? उत्तर मिलता है कदापि नहीं। इस बात का प्रमाण हमें उन देशों की वर्तमान परिस्थिति से मिल सकता है जहां विज्ञान और तकनीकी चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। रूस, अमरीका, इंगलैंड, फ्रांस आदि देश वैज्ञानिक उन्नति में बहुत बढ़ चुके हैं तथा दूसरे ग्रहों तक पहुँचने का भी पूर्ण प्रयास कर रहे हैं परन्तु फिर भी वे सुख एव शांति से वंचित हैं क्यों कि केवल भौतिक उन्नति मानसिक सुख नहीं दे सकती अपितु वह तो इच्छाओं तथा बुराइयों की वृद्धि करने में सहायता देती हैं। इन देशों में आध्यात्मिकता को कुचला गया है। इस कारण आज वहां पर अशांति ही अशांति दृष्टिगत होतो है।

आध्यात्मिकता का दूसरा नाम मानवता है। आप कह सकते हैं कि वे समृद्धिशाली देश अन्य पिछड़े देशों को करोड़ों रुपये दे कर सहायता कर रहे है? हां, अवश्य है। परन्तु देखना यह है कि क्या वे यह सहायता केवल मानवता की भावना से कर रहे हैं? उत्तर मिलता है-नहीं। उन का आश्रित देशों की सहायता करने का उद्देश्य

उन्हें अपना अनुचर बनाना है। मैं यह नहीं कहता कि उन का शत-प्रतिशत यही उद्देश्य है। ऐसा कहना तो उनके प्रति कृतघ्नता प्रकट करना है। इस सहायता के लिये हम उन के धन्यवादी हैं परन्तु यह एक तथ्य है कि यह सहायता केवल मानवता की भावना से नहीं दी जा रही।

भौतिक प्रगति का अन्य नाम भोगवाद है तथा मानवता का दूसरा नाम त्याग भावना है। भोगवाद तो सुख की प्राप्ति की तृष्णा की केवल वृद्धि करता है और त्याग भावना इस तृष्णा की समाप्ति करती है।

इच्छा तथा कामना का पूर्ण होना सुख नहीं है क्योंकि एक इच्छा के पूर्ण हो जाने के पश्चात् दूसरी उठ खड़ी होती है और फिर शैतान की नसों की भांति बढ़ती हुई चली जाती है। सुख तो इच्छाओं एवं कामनाओं के रोकने से तथा उन पर नियंत्रण कर लेने पर ही मिलता है। यह केवल त्याग करने से ही मिल सकता है। त्याग और मान-वता का एक ही अर्थ है।

वेद में दो मंत्र मिलते हैं। एक में मनुष्य के लिये यह आदेश है कि मानव बनो× और अंधकार से दूर रहकर प्रकाश की ओर जाओ। दूसरे मंत्र में यह कहा गया है कि तुम उल्लू, भेड़िया, कुत्ता, कुक्कुट, गरुड़ और गिद्ध आदि के स्वभाव से बचे रहो। ❀

×मनुर्भव। (ऋ० १० । ५३ । ६)

तमसो मा ज्योतिर्गमय। (शतपथ० १४।३।१।३०)

❀उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥

अथर्व वेद ८।४।२२

यदि मनुष्य इन दो मन्त्रों के आदेश का पालन करे तो वह मानवता के गुणों से पूर्ण हो सकता है। परन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान पीढ़ी ने इस दैवी कथन का अनुसरण तो किया नहीं अपितु इस के विपरीत पूर्ण रूप से चल रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस ने मानव बनना छोड़ दिया है और उपरोक्त जानवरों की आदतों को अपना लिया है।

मानव बनने का अभिप्राय यह है कि मानवों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति एवं आस्था हो। एक दूसरे के आराम तथा सुख का ध्यान हो। एक दूसरे से भय तथा अनिष्ट न हो, सब एक दूसरे के प्रसन्नता और दुख में सम्मिलित हों। एक दूसरे की उन्नति और समृद्धि को देख कर प्रसन्न हों और एक दूसरे को ऊंचा उठाने में प्रयत्नशील हों। एक दूसरे को सद्भावना को ठेस न पहुँचाया जाये। आपसी प्रेम और मेल मिलाप का बोलबाला हो। एक दूसरे का अधिकार न छीना जाये। जीवन में सादगी और स्वभाव में सज्जनता हो। विचारों में पवित्रता हो, एक दूसरे की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाये। ईश्वर ने मनुष्य को जिस रूप में अर्थात् धन, शक्ति, योग्यता तथा बुद्धि आदि में बड़प्पन दिया है, वह बड़प्पन दूसरों के हित तथा सेवा के लिये प्रयोग में लाया जाना चाहिये।

शुभ वचन बोलें। विचार व्यापक हों, भावना शुद्ध तथा पवित्र हों, भाव ऊंचे हों, सकल्प में पवित्रता और दृढ़ता हो, अंतःकरण शुद्ध हो। वाणी में माधुर्य हो तथा उद्देश्य में स्थिरता। ईमानदारी, सत्यता तथा शुद्धता का मार्ग अपनाया जाये।

ये हैं मानवता के लक्षण, उसकी विशेषताएं तथा उस के नियम जिन्हें हम ने विस्मृत कर दिया है। इन नियमों के बिना हम विज्ञान एव तकनीकी में चाहे कितनी ही उन्नति करलें, भौतिक प्रगति में चाहे कितने ही बढ़ जाय, फिर भी हम वास्तविक सुख और शांति से वंचित रहेंगे। अतः हमें भौतिक उन्नति के साथ २ मानवता तथा आध्यात्मिकता के मार्ग पर भी अग्रसर होना चाहिये।

————

पाशविक प्रकृति

मैं पहले बता चुका हूं कि हम किस प्रकार मानवता की पवित्रता से परे हो गये हैं तथा अमानवता के गर्त में जा फसे हैं। वेद मंत्र में बताये गये पशुओं की आदतों को हम ने किस प्रकार धारण कर लिया है। उस पर कुछ विचार करना आवश्यक है।

प्रथम पशु उल्लू कहा गया है। आज कई लोग उल्लू की भांति अंधकार में ही रहना पसन्द करते हैं। प्रकाश में जाकर यह देखना भी नहीं चाहते कि उन की जाति पर कितनी प्रकार की तथा कितनी मात्रा में मलीनता जमी हुई है और न ही उसे साफ करने का ध्यान आता है। जो मनुष्य अपने कर्तव्यों को नहीं समझता है, अपने हित-अहित का विचार नहीं करता, अपने देश के हानि-लाभ को पहचानने का प्रयास नहीं करता, वास्तव में वह उल्लू की चाल पर ही चलता है।

वेद-मन्त्र में दूसरा पशु भेड़िया आता है। भेडिये की यह विशेषता है कि वह अपने से निर्बल पशुओं पर झपटता है और उन्हें फाड़ खाता है। इस प्रकार कई लोग अपने भाइयों के अधिकारों पर, उन की धन-सम्पति पर टूट पड़ते हैं। दूसरों पर अत्याचार करने में आनन्द लेते हैं। उन को कष्ट देने में प्रसन्न होते हैं। उनकी हानि में अपना लाभ समझते हैं तथा उन्हें भाँति-भाति के दुःख देने में तत्पर रहते हैं। ऐसे लोग मानव नहीं अपितु मनुष्य के रूप में भेड़िये हैं। उन का रूप और कार्य भी भेड़िये की भाँति होता है।

तीसरे पशु कुत्ते का वर्णन मिलता है। कुत्ते का यह स्वभाव है कि वह अपने सजातीय भाइयों की उपस्थिति को सहन नहीं कर सकता। यह एक प्रसिद्ध उक्ति है कि "कुत्ते का कुत्ता वैरी।" कुत्ता यदि भूखा न भी हो और उसे रोटी मिल जाये तो वह उसे उठा कर कहीं छिपा देता है तथा बिना किसी कारण के भौंकता रहता है। इस प्रकार जो लोग अपने भाइयों से घृणा करते हैं, अपना धन आदि न स्वय व्यय करते हैं और न उससे दूसरों की सेवा व सहायता करते हैं तथा अकारण ही व्यर्थ बोलते रहते हैं, आवश्यक वस्तुओं के भण्डार छुपा कर जनता को दुःखी करते हैं, ऐसे लोग कुत्तों की गणना में आते हैं।

चौथा पशु है कुक्कुट। कुक्कुट सदा अकड़ कर चलता है। गंदे स्थान पर अपनी चोंच मारता है। वह बड़ा कामुक होता है। दूसरे मुर्गों से लड़ता रहता है और लड़ झगड़ कर लहू लुहान हो जाता है। इस प्रकार जो लोग अभिमान से सिर को अकड़ा कर चलते हैं, मांस, मदिरा तथा नशीली वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, दूसरों की बहू-बेटियों पर कुदृष्टि रखते हैं तथा विषय वासना में ग्रस्त रहते हैं, अपने सजातीय भाइयों से लड़कर हत्या तथा रक्तपात करते हैं वे लोग कुक्कुट को गणना में परिगणित किये जाते हैं।

गरुड पक्षी पांचवां है जिस का नाम वेदमन्त्र में वर्णित है। गरुड़ का बाह्य आकार तथा रूप बड़ा चटकीला एवं भड़कोला होता है परन्तु उस का मन पसन्द भोजन है सर्प। वह सांप खा कर बहुत प्रसन्न होता है। इस प्रकार जो व्यक्ति घूंसखोरी, मुनाफ़ाखोरी तथा चोरबाज़ारी आदि अनुचित उपायों से धन कमा कर प्रसन्न होते हैं वे गरुड़ के पथ पर चलते हैं। यद्यपि अनुचित धन कमाने से उन की बाह्य चमक-दमक बहुत होती है परन्तु उन का अंतःकरण अंधकार पूर्ण होता है।

छठा पशु है गिद्ध यह सब पक्षियों से ऊंची उड़ान भरता है परन्तु उसकी दृष्टि पृथ्वी पर पड़े मृत पशु पर रहती है। शिकार को देखते ही वह अपनी ऊंची उड़ान छोड़ कर उस पर टूट पड़ता है और उसे खाकर बड़ा आनन्द लेता है। इस प्रकार जो लोग बातों में बड़ी शेखी मारते हैं तथा स्वयं को बड़ा ज्ञानी, शिक्षित, उदार और बुद्धिमान् प्रकट करते हैं, उनके कार्य बिल्कुल अप्रिय तथा निकृष्ट होते हैं। ये लोभी एवं लोलुप व्यक्ति लूटमार का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते। चोरबाजारी, मुनाफाखोरी तथा खाद्य वस्तुओं तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं में मिलावट करने से किंचित मात्र भी नहीं झिझकते, अपितु ऐसा करने में आनन्द लेते हैं। ऐसे ही लोग गिद्ध की विशेषताओं से पूर्ण होते हैं तथा उन्हें मनुष्य रूप में गिद्ध कहना अनुचित न होगा।

अब हमने यह देखना है कि हम कहां तक इन पशुओं को बुरी आदतों से बचे हुए हैं। ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि हम ने एक नहीं अपितु अनेक पाशविक आदतों को अपना लिया है और हमारे विचारों का प्रवाह दुष्कर्मों के साथ बहता हुआ चला जा रहा है।

आधुनिक मनुष्य ने सोचना तो नहीं छोड़ा और न ही वह छोड़ सकता है। हाँ, वह इस समय उलटे ढंग से सोचता है अर्थात् सच्चे मानव के सोचने के ढंग से बिल्कुल पृथक्।

प्रश्न उठता है कि सच्चे मानव की क्या विशेषताएं होती हैं। इन का वर्णन पहले किया जा चुका है। इस के बारे में अन्य विद्वानों ने जो अपने विचार प्रकट किये हैं, उन्हें भी आप की जानकारी के लिये बता देना उचित होगा। एक उर्दू कवि ने कहा है—

"दरदे दिल, पास वफ़ा, जज़्बा-ए-इमां होना"

(अर्थात् मानव के लिये आवश्यक है कि उसके पास सहानुभूति, आस्था तथा विश्वास से पूर्ण भावनाएं हों।)

यही मनुष्यता है तथा यही मानवता कहलाती है। एक सच्चे मानव में कम से कम उपर्युक्त तीन विशेषताओं का होना आवश्यक है अर्थात् एक तो उस के हृदय में दूसरों के लिये सहानुभूति हो, दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझे, दूसरों की सेवा के लिये तत्पर रहे, दूसरों का आवश्यकता तथा भावनाओं का ध्यान हो। दूसरी बात यह है कि उस का मन शुद्ध हो। जिस किसी से कोई भी सम्बन्ध हो, उसे पूरी ईमानदारी से निभाये अर्थात् माता-पिता के प्रति, सन्तान के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, स्वामी का सेवक के प्रति तथा सेवक का स्वामी के प्रति, राजा का प्रजा के प्रति तथा प्रजा का राजा के प्रति तथा नागरिक आदि के रूप में जो भी आपसी सम्बन्ध हैं, उन्हें पूर्ण सात्विकता तथा श्रद्धापूर्वक निभाना चाहिये।

तीसरा यह है कि मनुष्य में धर्म की भावना होनी चाहिये क्यों कि यह भावना मानवीय जीवन का प्राण है। एक विद्वान का कथन है—

इन्सां है जहां में वह आदमी कि जो।
मतासब व हरीस नहीं ऐब हैं नहीं॥

(अर्थात् वास्तव में सच्चा मानव वही है जिस में साम्प्रदायिकता, लोलुपता तथा कोई व्यसन नहीं है।)

संसार में वह मनुष्य ही सही अर्थों में मानव है जो संकीर्ण हृदय और संकुचित दृष्टि नहीं रखता। जिस का हृदय विशाल होता है तथा दृष्टि व्यापक लोभ तथा अहंकार में वह दूसरों के अधिकारों को नहीं छीनता इसके साथ-साथ वह दूसरों को अवगुणों को नहीं

देखता अपितु उन की अच्छाइयों और गुणों का आदर करता है। एक अन्य सज्जन ने कहा है

यही है शरफ इन्सानो की इन्सां मरुत हो!
सख़ी हो, रहमदील हो, खुश खल्क हो, नेक सीरत हो।

(अर्थात् मानवता की यही श्रेष्ठता है कि मनुष्य दानी, विशाल हृदय, दयालु, प्रसन्न चित्त तथा सुकर्मशील हो।)

इस प्रकार एक अन्य पवित्र आत्मा का कथन है—

नीयत हो साफ अपनी और ईमान जाँ हो।
हो दिल में नेकियाँ और मीठी ज़बां हो॥

(अर्थात् शुभ भावना हो, निष्ठावान् हो तथा शुद्ध हृदय के साथ साथ उसकी वाणी भी मधुर हो।

अन्य कवि के भी ये शब्द हैं—

अगर आदमी हो हक़े इन्सां से गाफ़िल।
क्या शक है हैवां इन्सां से बहतर॥

(अर्थात् यदि कोई मनुष्य मानवता से पूर्ण है तो इस में कोई सन्देह नहीं कि वह मानवता से भी उच्चतर है।)

इस प्रकार हम ने देखा है कि आधुनिक मनुष्य साधारणतः इन गुणों से वंचित है। वह स्वार्थ तथा सकुचित दृष्टिकोण का पुतला बन चुका है।

आधुनिक मनुष्य दूसरों को कष्ट एवं हानि पहुंचाने में किंचित् मात्र भी लज्जा अनुभव नहीं करता। अपने थोड़े से पैसों के लिए दूसरों का प्राण लेने से भी नहीं हिचकता। अपने कर्तव्यों से बिल्कुल विमुख है। अपने अधिकारों का सदा रट लगाये रहता है। इस प्रकार वह द्विपद व्यक्ति चतुष्पद पशुओं से भी निकृष्ट हो गया है।

सादा जीवन उच्च विचार

मनुष्य के लिये समग्र विश्व पर विजय प्राप्त करना सहज कार्य है। उस के लिए यह भी कठिन कार्य नहीं है कि वह प्रतिभा की ऐसी शिखर पर पहुँच जाये जहां तक दूसरा कोई भी नहीं पहुँच सकता। अग्नि की ज्वाला में कूदना, सागर की लहरों में आनन्द लेना, पर्वतों की शिखाओं को चीरना उस के लिये असम्भव नहीं है, परन्तु यह बहुत ही कठिन है कि वह सच्चरित्रता एव पवित्रता के मार्ग पर चल कर सच्चा मानव बन जाये।

यह भी देखा गया है कि साहसी व्यक्ति अपनी समस्त शक्ति तथा साहस से संसार की समग्र बाधाओं का अकेले ही मुकाबला कर सकता है. परन्तु काम-वासना तथा लोभ एवं लालच की एक बाधा को अपने मार्ग से हटा देने में सफल नहीं होता तथा उस में गिरावट आ जाती है।

सिकन्दर महान् समस्त संसार को जीतने का इरादा रखता था तथा उस ने अपने शौर्य एवं साहस से कई देशों पर अपना अधिकार जमा लिया परन्तु बाबुल की एक स्त्री जब उस के सम्मुख आयी तो वह अपनी कामेच्छा पर नियंत्रण न रख सका तथा इस प्रकार उस का पतन हो गया।

सेनाका समस्त विश्व को शुभ उपदेश दिया करता था, परन्तु एक विवाहित स्त्री के सम्मुख वह अपनी काम-वासना को नहीं रोक सका और पाप की ओर मुड़ गया।

मनुष्य अपनी आध्यात्मिक तथा शारीरिक शक्ति से सब कुछ करने में समर्थ हो सकता है परन्तु देखना यह होता है कि वह जो कुछ करता है किस दृष्टि, किस विचार तथा किस भावना से करता है।

मानवीय, कार्य की कसौटी मनुष्य की भावना ही है। एक इंजीनियर, डाक्टर अथवा वैज्ञानिक की योग्यता, चातुर्य, अनुभव तथा प्रतिभा का ज्ञान तभी होता है जब वह उस का शुद्ध भावना से प्रयोग करता है, अन्यथा उस की समग्र शिक्षा का मूल्य तीन कौड़ी भी नहीं है। धिक्कार है उन विशेषज्ञों पर जो अपनी जेब भरने के लिए देश तथा राष्ट्र की खुल्लम खुल्ला हानि करते हैं। इसके कई उदाहरण हम आप को पहले ही बता चुके हैं।

यह तो मैं पहले भी बता चुका हूँ कि वर्तमान मनुष्य में संकीर्ण भावना और सच्चरित्रता में पतन आने के क्या कारण हैं ? यह तो हम देखते हैं कि जितनी वस्तुएँ आज विद्यमान है, उतनी पहले न थी, जितनी सुख और आराम को सामग्री आधुनिक युग में उपलब्ध होती है, उतनी पहले न थी। आज जितना सम्मान उच्च शिक्षा तथा कला को प्राप्त है तथा आज भी रहा है, वह पहले नहीं था। परन्तु फिर भी हमारा इतिहास बताता है तथा अन्य देशों के विज्ञान भी उसका समर्थन करते हैं कि प्राचीन काल में इस भारत भूमि में मानवों की अधिकता थी। पुरातन काल में चीन, ईरान तथा अन्य देशों से आने वाले यात्री विद्वानों ने लिखा है कि यहां चोरी, बदमाशी, दुष्टता, दुराचार, छल-कपट तथा असत्यता आदि का नामोनिशान तक न था। यहाँ तक कि लोग घरों को ताला तक न लगाते थे ! लेन देन के लिये कोई दस्तावेज न होते थे परन्तु फिर भी लोग अपने वायदों के पक्के थे। इस का कारण यह था कि हमारे जीवन

का लक्ष्य सादा जीवन और उच्च विचार था। इसका परिणाम यह निकला कि उन की आवश्यकताएं अल्प मात्रा में होती थीं। इस लिये उनकी पूर्ति के लिये उन्हें अधिक भाग-दौड़ करने की आवश्यकता न होती थी, दूसरे के अधिकार को छीनने का प्रश्न ही नहीं उठता था। परन्तु इस के विपरीत आज हमें यह आदेश दिया जाता है कि पश्चिमी देशों के पदचिह्नों पर चल कर अपना जीवन-स्तर ऊंचा करो। जिस का फल यह हुआ कि हम ने अपनी आवश्यकताओं की वृद्धि कर दी है। आय के साधन कम हैं तथा इनसे समस्त आवश्यकताएं पूर्ण नहीं हो सकतीं। इसी कारण विवश होकर दूसरों के अधिकारों पर किसी न किसी रूप में तथा किसी न किसी ढंग से छापा मारना पड़ता है और ऐसा करने से हम मानवता से गिर जाते हैं।

आज कल घूंसखोरी अधिकतर इस कारण बढ़ गई है कि साधारण वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारियों ने अपना जीवन स्तर ऊंचा बना लिया है। घर में बिजली का पंखा भी हो, रेडियो भी हो सोफा सेट भी हो, डिनर सेट भी हो, पति का सूट-बूट तथा पत्नी की साड़ी एवं सैंडिल मूल्यवान् हो और भोजन भी स्वादिष्ट मिले आदि आदि। भला इन समग्र आवश्यकताओं की पूर्ति साधारण वेतन से किस प्रकार हो सकती है। इसी कारण इन को पूरा करने के लिये किसी न किसी प्रकार धन प्राप्त करना होता है और यह धन दूसरों से अनुचित रूप में प्राप्त किया जाता है जिस के कारण मानवता नष्ट हो जाती है।

प्रश्न उठता है कि कई लोग तो बड़े २ वेतन पाते हैं। कई व्यापारी लोगों तथा मिल-मालिकों के पास अपार धन होता है। वे अनगिनत सम्पत्ति के स्वामी होते हैं, परन्तु फिर भी वे छल कपट से धन प्राप्त करते हैं। इन की आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए तो

धन का प्रश्न ही नहीं उठता, परन्तु फिर भी वे अनुचित उपायों से अधिक धन प्राप्त करने की कामना करते हैं। इन का ऐसा करने का कारण क्या है ?

इस का प्रथम तथा मूल कारण तो पहले बताया जा चुका है कि बचपन में मनुष्य को मानवता की शिक्षा नहीं दी जाती। न माता-पिता मानवता की शिक्षा देने के लिए कष्ट उठाते हैं, न गुरुजन इस ओर ध्यान देते हैं। शुद्ध वातावरण भी नहीं मिलता और न शुभ संस्कार पड़ते हैं। इस के साथ साथ मनुष्य के स्वभाव में भी पशु की भांति एक विशेषता है कि उसके मुख को एक बार रक्त लग जाये तो उसे उस का चस्का पड़ जाता है तथा मनुष्य व्यसन का दास बन जाता है।

यदि एक बार छल कपट, धोखा तथा बेईमानी से धन कमा लिया जाये दो चार बार दोहराने से वह आदत का रूप धारण कर लेता है। इस आदत का बदलना सहज कार्य नहीं है क्योंकि मुफ्तखोरी का चस्का बड़ा आकर्षक होता है। इस आदत का बदलना तब तक कठिन है जब तक उस के सुधार के लिये कोई विचार न हो तथा उसे दूर करने के लिये कोई साधन न हो। उपदेश तथा शिक्षा भी इस आदत को बदलने में बड़ी सहायता करते हैं।

हमारी संस्कृति का लक्ष्य, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सादा जीवन तथा पवित्र एवं उच्च विचार हैं परन्तु पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा, जिससे हम अधिक प्रभावित हुए हैं, इच्छाओं तथा कामनाओं को बढ़ाने में उकसाती है।

इच्छाओं में एक विशेषता है कि उनका भण्डार कभी रिक्त नहीं रहता। एक इच्छा पूर्ण हुई तो उस के स्थान पर दूसरी तुरन्त उठ

खड़ी होती है तथा इस प्रकार यह सिलसिला जारी रहता है।

इच्छाएं शैतान की काल्पनिक नसों की भांति बढ़ती रहती है। इच्छाओं के बढ़ने से लोलुपता तथा लोभ की भी वृद्धि होती है। इनकी पूर्ति के लिये किसी प्रकार से धन प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है और ऐसा करने से दूसरों के अधिकारों पर छापा मारा जाता है तथा इस प्रकार मानवता की हत्या की जाती है।

———

मायादास नहीं, मायापति

धन से कम प्रेम करना हमारा तीसरा आदर्श था। इस आदर्श को इन शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है कि 'मायादास न बन कर मायापति बनो' अर्थात् माया तुम्हारी दासी अथवा सेविका हो। तुम उस के दास न बनो। परन्तु इसके विपरीत आज प्रत्येक व्यक्ति लखपति बनने के स्वप्न लेता रहता है।

पश्चिमी देशों ने इस प्रकार का एक बहुत बड़ा साहित्य निकाला है कि हम लखपति अथवा करोड़पति किस प्रकार बन सकते हैं। इस साहित्य को बड़े चाव से पढ़ा जाता है तथा जो उपाय इन पुस्तकों में बताये हुए हैं उन का पूरा पूरा अनुकरण किया जाता है। इसका फल यह होता है कि हम धन से इतनी मात्रा में प्रेम करते हैं कि इस की तुलना में स्वजनता, मित्रता, प्रेम एवं स्नेह, धर्म एवं चरित्र सभी को एक ओर रख देते हैं। यही कारण है कि आधुनिक युग में जितना आदर धन तथा धनवान का होता है, उतना माता पिता का नहीं, गुरु एव पैगम्बर का नहीं, पूर्वजों का नहीं, विद्वान् एवं ज्ञानी का नहीं तथा न ही कलाकार का होता है। परन्तु जहां इन लोगों का अनादर होता है वहां मानवता का न आदर होता है न महत्त्व।

आज हम देखते हैं कि धनवान चाहे मानवता के स्तर से गिरकर पशु हो नहीं अपितु शैतान का साथी बन गया हो, फिर भी उसे प्रतिष्ठित स्थान दिया जाता है। उसे प्रत्येक सभा का सभापति

बनाया जाता है। केवल यह ही नहीं अपितु उसे धार्मिक स्थानों में भी आदरपूर्वक बिठाया जाता है। इसी कारण आज न सच्चे मानव का सम्मान है तथा न मानवता का। ऐसी दशा में लोग मानव बनने की आवश्यकता नहीं समझते अपितु धनवान् बनने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। फल-स्वरूप वर्तमान पीढ़ी में मानवता का ह्रास हो रहा है।

प्रश्न उठ सकता है कि अमरीका, इंग्लैंड, जर्मनी आदि देशों में भी तो लोग लखपति और करोड़पति हैं परन्तु फिर भी वे किस प्रकार उन्नत हैं तथा उनका देश एव राष्ट्र किस प्रकार प्रगति के शिखर पर पहुँच रहा है। इस का उत्तर यह है कि इन लोगों को धन अर्जन करने में प्रेम है, धन से प्रेम नहीं। निस्सन्देह वे करोड़ों रुपये कमाते हैं परन्तु अपनी आय का अधिकतर देश की भलाई के लिये, राष्ट्र सेवा के लिये तथा मानव हित के लिये व्यय कर देते हैं। इन देशों की वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थाएं, जो भिन्न भिन्न विषयों में अनुसंधान तथा अन्वेषण करती हैं, करोड़ों रुपयों की लागत से बनी हैं तथा चल रही हैं। ये संस्थाएं वहां के इन करोड़पतियों की कृतज्ञ हैं जिन की सहायता से ये मानव हित के लिये बड़ी बड़ी खोजें कर रही हैं। अतः हम देखते हैं कि यदि वे धनोपार्जन करना जानते हैं तो व्यय करना भी जानते हैं।

धन में यह एक विशेषता है कि वह केवल उपार्जन करने वाले को ही सुख नहीं देता अपितु उसे भी सुख प्रदान करता है जो उपार्जन तथा व्यय करने की महत्ता से विज्ञ हों।

यह एक प्रसिद्ध कहावत है जिस का धर्मशास्त्र पूरे बल से समर्थन करते हैं कि मनुष्य को जितनी प्रसन्नता दान करने से होती है उतनी लेने से नहीं होती। परन्तु जो दान विवशता के कारण न हो कर हृदय से तथा सच्चे उत्साह से किया जाये उसी में वास्तविक

आनन्द मिलता है। यही अन्तर है आज के भारतीय और पाश्चात्य धनिकों में। वहां के लोग कमा कर व्यय करना अर्थात् दान करना भी जानते हैं और यहां की वर्तमान पीढ़ी केवल कमाना चाहती है और फिर उसे तिजोरियों में बन्द रखना चाहती है। वहां के लोग उपार्जन करते समय सच्चरित्रता, न्याय, सभ्यता तथा सज्जनता को अपनी दृष्टि में रखते हैं जब कि यहां के लोग धन प्राप्त करने के लिए प्रत्येक अच्छाई को एक कोने में रख देते हैं और किसी भी उपाय व ढंग से धन प्राप्त करने में कसर नहीं छोड़ते। वे जानते हैं कि इस समय भारत में धनवान् का सम्मान है तथा धनी का प्रत्येक स्थान पर आदर होता है और धनिक का मान-सम्मान स्थिर है। अतः धन प्राप्त करने में समग्र पवित्र विचारधारा अर्थात् सच्चरित्रता, न्याय तथा धर्म को विस्मृत कर दिया जाता है। मैं तो यों कहूंगा कि धन के कारण न्याय एवं धर्म को बेच दिया जाता है। अतः भारतीय धनिकों पर एक उर्दू कवि ने कहा है—

अक्सर अमीर है कि यहाँ बे नज़ीर है।
दौलत के आसमां पर बदरमीज़ है॥

परन्तु उन की दशा क्या है। इस पर भी कवि की उक्ति है।

'इन को खुदा को यद न बन्दों की शर्म है।
दिन हो कि रात ऐश का बाज़ार गर्म है॥
और वह जो लखपति है महाजन जहां में।
आधी ढलो है पे वह अभी है दुकान में॥

गिनती में दरम दरम के है दम दिये हुए।
बैठा है आगे सब यही खाता लिये हुए॥
है सारे लेन देन की मेज़ां तमाम को।
पर सोये क्या कि 'बिध' है नहीं मिलती छदाम की॥

वास्तव में यही दशा है भारत के धनपतियों की। आप कहेंगे कि बिना कारण ही पश्चिमी जनता की प्रशंसा कर भारतीय जनता की भर्त्सना कर रहा हूँ। परन्तु ऐसी बात नहीं है गुण की सर्वत्र ही पूजा होती है। चाहे वह अपने में हों अथवा दूसरे में और बुराई जहां भी हो, उस की प्रत्येक स्थान पर निन्दा होती है।

मैं ने कई स्थानों पर यही कहा है कि हमारे चरित्र को जिस वस्तु ने बड़ा धक्का पहुँचाया है वह है पश्चिमी सभ्यता तथा पश्चिमी शिक्षा। परन्तु इस के साथ ही मैं यह भी तो कहता हूँ कि पश्चिम की एक एक बुराई को हम ने गले लगाया है परन्तु उनके गुणों की ओर देखने का भी कष्ट नहीं किया।

भारतीय धनवानों तथा विदेशी धनवानों का मैं ने जो अन्तर बताया है उस का प्रमाण यह है कि आप लोग समाचार पत्र पढ़ते होंगे तथा उस में आप स्वयं देखते होंगे कि विदेश के बड़े बड़े धनपति लोभ तथा लालच के कारण जेल की कोठरी में बन्द हैं। परन्तु यहां की दशा आप को ज्ञात होगी। मैं उन लोगों का नाम नहीं बताऊंगा जो लखपति एवं करोड़पति होते हुए भी लोभ तथा लोलुपता की अग्नि को नहीं रोक सकते तथा सौभाग्यशाली होते हुए भी अपने कुविचारों के कारण आज कारावास में पड़े अपने दुर्भाग्य पर अश्रु बहा रहे हैं।

धनवान के बारे में एक कवि की उक्ति है जिसे कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता—

दमड़ा उसी का जो खर्चे और खाये।
देवे दिलाये रजाये खुदाये॥
होता न राखे, अकेला न खाये।
तहकीक दानी वही बहिश्त पाये॥

(अर्थात् वही सच्चा धनी है जो व्यय करता है और खाता भी है। ईश्वर की कृपा से दूसरों को दान देता भी है और दिलाता भी है। यदि उस के पास धन होता है तो वह उसे रखता नहीं तथा अकेले नहीं खाता। वास्तव में वही दानी स्वर्ग को प्राप्त करता है।)

———-—

संगति तथा पठन का प्रभाव

मैंने पहले भी बताया है कि एक समय था जब भारत का मान एवं गौरव इसी बात में था कि यह सच्चे मानवों का देश था। अन्य देशों के लोग यहां की मानवता के सुन्दर दृश्यों को अपने नेत्रों से देखने तथा मानवता की शिक्षा प्राप्त करने के लिये आया करते थे। वहां से मानवों को स्वदेश में बुलाकर अपने देशवासियों के सम्मुख मानवता का जीता-जागता आदर्श प्रस्तुत करते थे तथा मानवता की शिक्षा को ग्रहण करते थे। परन्तु आज तो पांसा ही बिलकुल उलट गया है। यहाँ जनसंख्या की समस्या उठ खड़ी हुई है, खाद्य समस्या चिंता का विषय बनी हुई है परन्तु मानवता की समस्या की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जा रहा। एक उर्दू कवि का कथन है—

मर्दों से गो कि यह बस्ती भरी है,

वले इस में मिलता न इन्सां कहीं है।

(अर्थात् यह नगरी पुरुषों से तो भरी हुई है परन्तु इस में कहीं भी मानवता के दर्शन नहीं होते।)

इस के पश्चात् एक प्रश्न उठता है कि इस पतन का कारण क्या है ? जैसा कि पहले बताया गया था कि हम भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धांतों को भूल बैठे हैं। इन को यहाँ दोहराना अनुचित न होगा। हमारे सिद्धांत ये थे—

१—रहन सहन सादा हो तथा विचार उच्च हों।

२—इच्छाओं और कामनाओं पर नियंत्रण रख उन्हें कम किया जाये तथा अपनी आवश्यकताओं को घटाया जाये।

३—माया के दास न हो कर माया के पति हों।

हमने इन तीनों सिद्धांतों की पूर्णयता उपेक्षा की है तथा हमारा दृष्टिकोण इन सिद्धांतों के शत प्रतिशत विपरीत है। चूंकि इस समय सम्मान तथा प्रतिष्ठा केवल धनवानों की है इसी लिये धन प्राप्त करने के लिये मानवता के सभी गुणों अर्थात् धर्म, आस्था, सच्चरित्रता, सज्जनता, न्याय तथा परहित को बलिदान किया जाता है क्यों कि मान एवं यश प्राप्त करने की इच्छा मनुष्य जाति में स्वाभाविक रूप से रहती है तथा आज मान और यश का अधिकारी केवल धनी ही होता है। अतः धन प्राप्त करने के लिये भलाई के सारे गुणों पर कुठाराघात किया गया है तथा तिरस्कृत उपायों द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति की जाती है।

यदि हम ईमानदार, चरित्रवान तथा सज्जन लोगों का सम्मान नहीं करेंगे, तो कौन इन गुणों को अपनायेगा। जब ऐसे लोगों की मांग ही नहीं है तथा इन को ऐसा बनने के लिये कोई प्रयत्न ही नहीं किये जाते तो फिर ऐसे मानव कहां से उत्पन्न होंगे ?

इस विषय में एक अन्य बात बताना है कि जिस ने हमारे चरित्र तथा सज्जनता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। वह है साहित्य अर्थात् पाठ्य पुस्तकें।

अंग्रेजी में एक उदाहरण है कि किसी मनुष्य के चरित्र का अनुमान दो बातों से लगाया जा सकता है। एक तो यह कि अमुक किसी प्रकार के लोगों की संगति पसन्द करता है और दूसरा यह कि वह किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ता है। संगति तथा पठन ही किसी मनुष्य या राष्ट्र के चरित्र पर प्रभावित हो कर इस को बनाने या बिगाड़ने में सहायक होते हैं।

इस समय जिस प्रकार का 'लिट्रेचर' हमारे भारतीय युवक तथा

युवातियां पढ़ रहे हैं वह किसी दशा में भी इनके चरित्र को ऊंचा करने नहीं देता तथा न इन के चरित्र में उभार उत्पन्न कर सकता है अपितु इसे तीव्र गति से नष्ट भ्रष्ट कर रहा है।

यदि आप पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों पर जा कर जरा ध्यान से देखें तो आप को वहाँ चरित्र को ऊंचा उठाने वाली पुस्तकें अल्प मात्रा में मिलगी परन्तु चरित्र में पतन लाने वाली पुस्तकों का भण्डार लगा हुआ दिखाई देगा।

अपने निजी अनुभव के अनुसार इस वास्तविकता का मेरे पास प्रमाण भी है। जिन दुकानों पर मेरी पुस्तकें रखी हुई हैं, वे दुकानदार कहते हैं—"चावला जी! आजकल इन पुस्तकों की मांग ही नहीं है, हम क्या करें। अतः अब कोई चटपटी पुस्तकें लिखा करो।"

मैं ने १९४४ में गीता के अध्ययन को दैनिक जीवन में ढालने के हेतु कई पुस्तकें लिखी थीं, वे अब तक समाप्त नहीं हुई हैं। वे दुकानदार बताते हैं कि जासूसी उपन्यास तथा प्रेम कहानियां प्रत्येक सप्ताह सहस्रों तथा लाखों की संख्या में बिक जाती हैं।

इस प्रकार का चारित्रिक पतन करने वाला समस्त साहित्य या तो पश्चिमी रचनाओं का अनुवाद है या उन्हीं के ढग पर लिखे हुए उपन्यास तथा कहानियां हैं। हमारे लोभी लेखकों सम्पादकों तथा प्रकाशकों ने केवल धन प्राप्त करने तथा टके खरे करने की लालसा से इस प्रकार की भद्दी रचनाओं का बाज़ार खोल रखा है।

बहुत से लोभी एवं चतुर लेखकों ने 'यथार्थ प्रेमालाप' की आड़ में सुहागरात तथा प्रथम सहवास रात्रि के सम्बन्ध में ऐसी अश्लीलता का वर्णन किया है कि उन से ईश्वर ही बचाये। प्रेम कहानियां तथा जासूसी उपन्यास इस ढंग से लिखे गये हैं और उन के भीतर ऐसी गंदी सामग्री भरी गई है कि उन्हें पढ़ने वाली कभी उच्च चरित्रवान् बनने का स्वप्न भी नहीं देख सकता।

इस प्रकार का 'लिट्रेचर' प्रकाशित करने वाले लोग वास्तव में किसी मानसिक रोग में ग्रस्त होते हैं अन्यथा कोई साधारण सूझ बूझ वाला व्यक्ति किसी दशा में इस प्रकार की दुर्गन्धि फैला कर राष्ट्र के चरित्र को ऐसी निर्भीकता तथा धृष्टता से कलुषित करना पसन्द नहीं करेगा।

यदि 'यथार्थ प्रेमालाप' इसी अश्लील तथा वासनात्मक कथन का नाम है तो राष्ट्र का इससे वंचित रहना सौभाग्यशाली होना है।

इस अश्लील तथा वासनात्मक साहित्य ने राष्ट्रीय चरित्र को कलंकित कर दिया है। इस प्रकार का साहित्य पढ़ने वाले नवयुवक अवश्य ही चरित्रहीन हो जाते हैं। वे नवयुवक प्रथम तो स्वयं पतित होते हैं, तत्पश्चात् अपने पतन की छूत को दूसरों में फैला कर चरित्र-हीनता तथा पतन के घेरे को दिन प्रति दिन अधिक विस्तृत करते रहते हैं।

जो नवयुवक तथा नवयुवतियां अश्लीलता तथा वासनात्मकता के काल्पनिक संसार में दिन रात व्यतीत करते हैं तथा उन का मानसिक वातावरण इस अश्लील विचारधारा का केन्द्र बना हुआ है, वे भला अपने जीवन में सज्जनता तथा पवित्रता की शुभ भावना को किस प्रकार अपने भीतर ला सकते हैं तथा किस प्रकार शक्तिशाली तथा उन्नतिशील आन्दोलन में भाग ले सकते हैं। क्यों कि जीवन के सम्बन्ध में उन का दृष्टिकोण अपने मूल से हट कर बिलकुल विपरीत मार्ग अपना चुका है तथा इस साहित्य के अंधकूप से दिन रात गन्दी तथा विषैली भाप उठ उठ कर उनके मन तथा मस्तिष्क,

बुद्धि एवं हृदय तथा आचरण एवं चरित्र को कलुषित कर अधिक निर्बल करती जाती है।

यह नाम मात्र का साहित्य नवयुवकों के चरित्र, हृदय तथा मस्तिष्क पर बिलकुल इसी प्रकार का प्रभाव डालता है जो कोकीन की एक गोली या पुड़िया डालती है अर्थात् यह साहित्य कुछ समय के लिये प्रसन्नता तथा आनन्द प्रदान करता है परन्तु धीरे २ मनुष्य को स्मरण शक्ति तथा विचार शक्ति का ह्रास करता है।

———

अश्लील साहित्य का प्रभाव

सच्चे मानव की आवश्यकता हम इस लिये अनुभव करते हैं कि इस समय इन का अत्यधिक अभाव है तथा जब तक इस अभाव को दूर नहींकिया जायगा तब तक इस देश के उन्नत होने की आशा नहीं की जा सकती अपितु देश की स्वतंत्रता को स्थिर रखना भी सन्देहपूर्ण हो जाये गा। महर्षि अरविन्द घोष से, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बढ़ चढ़ कर भाग लिया था, पूछा गया कि भारत अंग्रेजों से कैसे स्वतंत्र हो सकता है ? उन्हों ने उत्तर दिया कि देश के स्वतंत्र होने में मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं परन्तु जिस बात का मुझे भय है वह यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इसे स्थिर किस प्रकार रखा जायेगा।

जिस प्रकार महापुरुष तथा विचारक अपनी दिव्य दृष्टि से भविष्य की परिस्थितियों को भाप लेते हैं तो सम्भव है जब उन्होंने ये शब्द कहे थे, उन्हें यह विचार होगा कि भारतवासी अपने स्वार्थ एवं संकीर्णता, भीरुता, आलस्य तथा भाग्य की रट लगाने वाले होने के कारण स्वतंत्रता को संभालने के योग्य नहीं होंगे। आज उन का यह संशय शत प्रतिशत ठीक निकला है। स्वतंत्रता तो हम ने प्राप्त कर ली है परन्तु जिस बेढंगी चाल पर हम इस समय चल रहे हैं, इस को हम ने पूर्ण रूप से तिलांजलि न दी तथा सच्चे देशभक्त तथा सच्चे मानव बन कर स्वतंत्रता को संभालने के लिये तत्पर न

हुए तो निस्सन्देह महर्षि अरविन्द घोष की भविष्य वाणी सत्य ही सिद्ध होगी।

इस से पूर्व यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि हम किन किन दुर्बलताओं तथा त्रुटियों के शिकार हुए हैं जिन के कारण हम वर्तमान दूषित अवस्था में पड़े हुए हैं।

इस का वर्णन करते हुए मैं ने निवेदन किया था कि हम अपनी भारतीय संस्कृति के अनमोल सिद्धांतों को भुला बैठे हैं। इस का कारण यह है कि हम पर पश्चिमी सभ्यता तथा पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव पड़ा है। इस सभ्यता एवं शिक्षा का कुप्रभाव कई प्रकार से पड़ा है।

मैं ने पहले भी कहा था कि आधुनिक साहित्य हमारे देश के युवक तथा युवतियों के हाथों में जा रहा है जो हमारे चरित्र तथा आचरण को नष्ट कर रहा है। कहाँ वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, ग्रंथ साहिब, स्मृतियां तथा अन्य प्रकार के जीवन दायक एवं आध्यात्मिक शास्त्रों का अध्ययन तथा कहां प्रेम कहानियाँ और जासूसी उपन्यास एवं किस्से जिन के पढ़ने से नवयुवकों के मन और मस्तिष्क का इतना पतन हुआ है कि वे धर्म, प्रेम सहानुभूति, देश प्रेम. देश सेवा के न केवल विचार से अपितु नाम से भी वंचित हो चुके हैं।

यह एक प्रसिद्ध उक्ति है कि मनुष्य के चरित्र पर पुस्तकों का जो प्रभाव पड़ता है शायद अन्य किसी वस्तु का पड़ सकता हो। एक विद्वान् ने सत्य कहा है कि एक बुरा अध्यापक तो केवल पाठशाला को बिगाड़ सकता है परंतु एक बुरी पुस्तक न केवल एक देश को पतन की ओर ले जा सकती है। अपितु समस्त विश्व को पतन की ओर ले जा सकती है।

आजकल जो लेखक तथा प्रकाशक टकों के लिये गंदगी के ढेर प्रकाशित कर रहे हैं, उन को हमारे नवयुवक मनोरंजन के लिये

पढ़ते हैं। इसका फल यह होता है कि उन के विचार दूषित हो जाते हैं। अच्छी बात न तो मस्तिष्क में जाती है न इसे हृदय को स्पर्श करने का अवसर मिलता है। इस के साथ साथ इन के कार्य करने की शक्ति भी कम हो जाती है।

जिस पुस्तक के पढ़ने से पाठक का मस्तिष्क व्यभिचारी हो जाता है तो इस का यह अर्थ हुआ कि वह पाठक अपने समय के बहुमूल्य मोती तथा चरित्र रूपी धन को एक अस्थायी परन्तु नाशवान् आनन्द के लिये लुटाता है।

अच्छी पुस्तक से बढ़कर कोई मित्र नहीं तथा बुरी पुस्तक की तुलना का कोई शत्रु नहीं। जिस पुस्तक के पढ़ने से हम में करणीय तथा अकरणीय का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता अर्थात् अपने कर्तव्यों का ज्ञान नहीं होता तो वह पुस्तक पाठ्य नहीं है। जिस पुस्तक के अध्ययन करने से हमारा चरित्र कलुषित होता है, वह अपने पास रखने के भी योग्य नहीं अपितु अग्नि में जला डालने के योग्य है।

अतः माता पिता को, अध्यापकों को तथा अन्य वयोवृद्ध लोगों को इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये कि हमारे बच्चों तथा नव-युवकों को चरित्र घातक साहित्य पढ़ने नहीं दिया जाये। अच्छा उपाय तो यही होगा कि ऐसा साहित्य न तो प्रकाशित किया जाये तथा न ही जनता के सम्मुख आने पाये। जब तक ऐसा न हो जाये तब तक समाज को इस ओर ध्यान देना है तथा जो लेखक अथवा प्रकाशक इस प्रकार का साहित्य लिखे अथवा प्रकाशित कराये उसे प्रेम से देश तथा राष्ट्र के हित की बात कह कर ऐसा करने से मना करना चाहिये। यदि वह इसे स्वीकार नहीं करता तो उसकी प्रत्येक प्रकार की पुस्तकों तथा प्रकाशन का बहिष्कार करने का आन्दोलन समाचारपत्रों के द्वारा किया जाये।

जो व्यक्ति देश की आगामी पीढ़ी के चरित्र तथा आचरण को कलुषित करने का प्रयास करते हैं, वह देश तथा राष्ट्र के शत्रु हैं। उन के साथ मानव तथा सामाजिक के रूप में कड़ा व्यवहार कर उसे सुमार्ग पर लाया जाना चाहिये।

खेद है कि हमारी सरकार भी इस ओर ध्यान नहीं दे रही। बड़े २ उद्योग, शिल्पकला, विज्ञान तथा तकनीकी की समृद्धि के लिये योजनाएं बनाई जातीं हैं। योजना बनाने में करोड़ों रुपया व्यय किया जाता है परन्तु इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि कोई भी देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उस के देशवासी चरित्रवान् न हों। मैं यह नहीं कहता कि देश की औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नति अनावश्यक है। मेरे कहने का अभिप्राय केवल यही है कि इनसे भी अधिक आवश्यकता है राष्ट्र के चरित्र तथा आचरण के निर्माण करने की। यह हम स्वीकार करते हैं कि वर्तमान पीढ़ी पर पिछला साया पड़ा हुआ है, इनकी आदतें बन चुकी हैं। इन को सुधारने में कठिनाई भी हो सकती है परन्तु कोई कारण नहीं कि हम आगामी पीढ़ी की चारित्रिक पतन से रक्षा न करें।

सरकार का कर्तव्य है कि वह विधान बना कर अमानवीय तथा अश्लील साहित्य के प्रकाशन का निषेध कराये तथा इस का विरोध करने पर कड़ा दण्ड दिया जाये। यह कितनी विचित्र बात है कि हम अपनी असावधानी तथा असतर्कता के कारण धर्म तथा चरित्र की प्रवाहशील सम्पति को लुटा बैठे हैं। उसे फिर से प्राप्त करने के लिये हम आगे बढ़ने का प्रयत्न भी नहीं कर रहे हैं।

समाज को इस नवीन व्यवस्था के विरुद्ध पूर्ण रूप से आवाज उठानी चाहिये। यदि हम अपने देश के लोगों को सच्चे मानव बनाने में सफल हो जायें तो शेष समस्त समस्याओं का समाधान स्वयं ही हो जायेगा।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री जैसे कर्मठ तथा कर्तव्यशील संसद सदस्यों का कर्तव्य है कि वे इस लानत को दूर करने के लिये अधिनियम का एक प्रारूप बना कर संसद में प्रस्तुत करें।

मनोरंजन

इस बात को कोई अस्वीकार नहीं करता कि हमारा चरित्र विदेशी सरकार की आधीनता में रहने के कारण पतित हो गया था। धारणा यही थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हम सम्भल जायेंगे परन्तु आश्चर्य तथा खेद से कहना पड़ता है कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् हम पहले से भी अधिक गिर गये हैं। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि चरित्र को सुधारे बिना हम सही अर्थों में ऊपर नहीं उठ सकते। यदि हमने आर्थिक तथा औद्योगिक रूप में अथवा पुस्तक सम्बन्धी शिक्षा में प्रगति कर ली है तो भी वह हमें सच्चा सुख एवं शांति प्राप्त करने में सहायता नहीं दे सकती।

एक बार श्री शिवव्रत लाल वर्मन से प्रश्न किया गया कि यदि आप को अकस्मात् एक लाख रुपया मिल जाये तो आप क्या करेंगे? उन्होंने उत्तर दिया कि यदि मेरी अंतरात्मा जाग्रत एवं प्रकाशवान् न हुई होगी तो यह निश्चय है कि एकदम इतना धन प्राप्त करते ही मैं बदमाश बन जाऊँगा। यह सत्य है कि जिन लोगों ने स्वतंत्रता

प्राप्ति के पश्चात् अपनी आशा से अधिक धन प्राप्त कर लिया है उन में अधिकतर लोगों की यही दशा है जिस का भय श्री वर्मन जी ने अपने सम्बन्ध में प्रकट किया था।

यदि मुझ से कोई पूछे कि मंहगाई इस प्रकार क्यों बढ़ गई है तो मैं यही उत्तर दूंगा कि मंहगाई वही लोग बढ़ा रहे हैं जिनके पास अधिक धन आ गया है।

यह बात शतप्रतिशत सत्य है कि लाभ से लोभ की वृद्धि होती है अर्थात् जितना धन मनुष्य केवल एकत्रित करने के लिये कमायेगा उतना ही अधिक उसका लोभ बढ़ेगा। धनवानों की लिप्सा का कुप्रभाव धनहीनों पर भी पड़ता है। देश में किसी वस्तु का अभाव नहीं है। धनवान अधिक धनवान बनने के लिये ऐसे छल कपट करते हैं तथा ऐसे उपाय अपनाते हैं कि उनके पास अनाज तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के जो भण्डार हैं वह और भी अधिक महंगे मूल्य पर बिकते हैं तथा उन के 'बैंक बेलेंस' बढ़ते चले जाते हैं।

यह पहले बताया जा चुका है कि एक समय हमारा देश मानवता का हिंडोलना था। अन्य देशों के लोग यहां के ऋषियों तथा महात्माओं के चरणों में बैठ कर मानवता की शिक्षा प्राप्त किया करते थे परन्तु अब हम स्वयं ही इस गुण से वंचित हो गये हैं। हम ने अपनी मान-मर्यादा खो दी है।

अब मैं यह बताने का प्रयास करूंगा कि किन कारणों से हम अपना यह धन लुटा बैठे हैं। इस से पूर्व यह निवेदन किया गया है कि अधिकतर प्रभाव तो पश्चिमी शिक्षा तथा सभ्यता का है। पश्चिमी शिक्षा एवं संस्कृति अधिकतर भौतिक प्रगति की समर्थक है। हमने भी अपने आप को इसी ओर अंधाधुंध मोड़ लिया है।

यह एक सर्वमान्य नियम है कि मनुष्य जितना माया का अभिलाषी होता है तथा जितना सांसारिक वस्तुओं से प्रेम बढ़ाता है,

उतना ही वह मानता को भूलता जाता है। केवल सांसारिक प्रगति की इच्छा मनुष्य को ऐसे ढंग अपनाने तथा ऐसे मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा देती है जिस से वह मनुष्य न रह कर अन्य रूप धारण कर लेता है।

एक आवश्यक बात जो मानवता के गुण उत्पन्न करने तथा उन को जीवित एवं नूतन रखने में बहुत ज्यादा सहायता देती है वह है मनुष्य के मन पर शुभ प्रभाव अर्थात् शुभ संस्कारों के पड़ने से विचारों में उत्कृष्टता तथा पवित्रता के पुष्प खिलते रहते हैं तथा मनुष्य विशाल हृदय एवं पवित्र आत्मा बनता है। जो वस्तु विशाल हृदय तथा पवित्र अन्तरात्मा में विघ्न डालेगी वह मानवता रूपी मणि को मलिन तथा दूषित कर देगी।

पश्चिमी सभ्यता तथा शिक्षा ने ऐसे ही कुप्रभाव डाले हैं जिन से हमारे विचारों में अपवित्रता आ गई है तथा उस का ही यह फल है कि हमारे चरित्र तथा आचरण पतन के गर्त में जा पड़े हैं। इनमें अत्यंत घृणास्पद तथा भयावह दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई है जिस ने समस्त राष्ट्र के मस्तिष्क में विकार पैदा कर दिया है तथा जिसके कारण हमारी विचार-शक्ति में विकृति आ गई है अर्थात् हम जो कुछ सोचते हैं वह हमारी भलाई तथा लाभ के लिये न हो कर हानिकारक होते हैं।

अब एक अन्य विषय को लेता हूं और वह है हमारा मनोरञ्जन अर्थात् अवकाश के समय में किया गया मनोविनोद। मानव प्रकृति की एक आवश्यकता है कि वह दिन भर के परिश्रम के पश्चात कुछ मनोरंजन करने का इच्छुक होता है। शरीर तथा हृदय दोनों के लिये मनोरंजन का होना आवश्यक है ताकि थकावट दूर होने से उनमें प्रफुल्लता, शक्ति तथा नवीनता आ जाये। इस के साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि मनोरंजन ऐसा होना चाहिये जिससे हृदय

तथा शरीर को प्रफुल्लता तथा नवीनता तो प्राप्त हों परन्तु चरित्र एवं आचरण पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े ।

जब हम अपने वर्तमान मनोरंजन पर दृष्टि डालते हैं तो ज्ञात होता है कि साहित्य की भाँति हमने दुर्भाग्य से पश्चिम से मनो-विनोद भी इस प्रकार का प्राप्त किया है जो हमें दुश्चरित्रता तथा दुराचरण का पाठ सिखाता है । छुट्टी का दिन भी इस लिये रखा गया है कि मनुष्य इस दिन अपने शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क में सदाचार उत्पन्न करने वाले सिद्धांतों का मनन करते हुए इस प्रकार के मनोविनोद अपनायें जिन से उन में नई शक्ति का पदार्पण हो तथा वे रुचिपूर्ण बन जायें। परन्तु आज हम देखते हैं कि छुट्टी का दिन केवल अश्लील, अधार्मिक तथा चरित्रहीन हंसी मज़ाक तथा व्यर्थ की गपशप में व्यतीत किया जाता है हालांकि अवकाश का वास्तविक उद्देश्य यह था कि वह हमारे जीवन को एक अधिक श्रेष्ठ तथा उच्चतर वर्ग में पहुंचाने वाला प्रमाणित हो तथा हमें चरित्र एवं आचरण की शक्तिशाली तथा जीवनदायक सुधा पिलाने वाला हो अर्थात् हम घर से बाहर निकल कर प्रकृति के प्राणवर्धक दृश्यों तथा शांतिपूर्ण वातावरण से वास्तविक आनन्द प्राप्त करें परन्तु हमने इसके विपरीत अपने अवकाश के क्षणों को दुश्चरित्रता, ऐश्वर्य, दुरा-चरण के खेलों तथा चरित्र पर कुठाराघात करने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि में व्यतीत करना ही इस का उद्देश्य समझ लिया है जब कि इन अवकाश के क्षणों का इस प्रकार का प्रयोग बिल्कुल अनुचित, पापमय तथा हानिकारक है ।

हां – जब तक पतन के गर्त में ले जाने वाले ये मनोरंजन स्थिर रहेंगे हम स्वप्न में भी वास्तविक उन्नति प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते ।

जब तक हम स्वास्थ्यवर्धक मनोरंजन तथा प्रकृति माता द्वारा प्रदत्त असंख्य सम्पति का आनन्द लेने के लिये अपने अवकाश का समय नहीं लगाते तथा अपने वर्तमान चरित्रहीन मनोविनोद से दूर नहीं रहते तब तक हमें चारित्रिक उत्थान की कोई आशा नहीं। वतमान चरित्रहीन मनोविनोद ने हमारे भीतर सतीत्वरक्षा, सच्चरित्रता, सदाचार, शांति, हित तथा सहानुभूति आदि के सभी मौलिक गुणों को निकाल बाहर फेंका है। केवल यही नहीं अपितु उसने एक सुगठित तथा आनन्ददायक गृहसम्बन्धी जीवन का भी विनाश कर दिया है।

अब तो यह दशा है कि न माता पिता का सम्मान रहा है, न पति तथा पत्नी का परस्पर प्रेम दिखाई देता है। इसके साथ सन्तान का प्रेमपूवक पालन पोषण तथा ध्यानपूर्वक देखभाल करने की भावना भी नहीं रह गई है।

अतः हमें मनोरंजन की समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर उसमें परिवर्तन करने का संकल्प करना चाहिये।

———

नारी जाति

स्वतंत्र भारत अन्य स्वतंत्र देशों की तुलना में एक बालक के समान है। जिस प्रकार एक शिशु के विकास, उन्नति तथा सफलता के लिये कई साधनों पर विचार करने की आवश्यकता पड़ती है तथा इस बात का भी ध्यान करना पड़ता है कि उन साधनों का प्रयोग कैसे किया जाये। अतः इसी कारण हमें विदेशों से विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है तथा हमारे नवयुवक भी आवश्यक प्रशिक्षण लेने के लिये विदेशों में जाते हैं अतः इन विशेषज्ञों की प्राप्ति के लिये जो उपाय अपनाये जा रहे हैं वे भी ठीक हैं। परन्तु इस लेख में मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हमें अपने देश का उत्थान करने के लिये सच्चे मानवों की आवश्यकता है। इन मानवों को देशहित का ध्यान प्रथम करना चाहिये तथा बाद में अपनी भलाई का। वे प्रत्येक बात पर देश के हित की ओर पहले ध्यान दें। विशेषज्ञ लोग एक प्रकार से जनता के नेता, अग्रणी तथा सेनापति होते हैं। यदि किसी सेना का सैनिक सही मार्ग पर नहीं चलता तो इतनी हानि नहीं होती जितनी हानि एक सरदार अथवा सेनापति के गलत मार्ग पर चलने के कारण होती है। विज्ञान तथा तकनीकी के अतिरिक्त अन्य विषयों के भी जो विशेषज्ञ हैं उनके व्यवहार का भी इस प्रकार से देश तथा राष्ट्र की दशा पर अच्छा अथवा बुरा प्रभाव पड़ता है।

हमारे मंत्रीगण, न्यायालय के पदाधिकारी, कार्यालयों के उच्च श्रेणी के अफ़सर, मिल मालिक आदि सभी एक प्रकार के विशेषज्ञ स्वीकार किये जाते हैं। यदि ये लोग कर्तव्यशील, देशभक्त तथा

चरित्रवान् होंगे तो देश में ऐश्वर्य तथा विभूति का साम्राज्य हो जायेगा। इसके विपरीत यदि वे स्वार्थी लोलुप तथा दुश्चरित्र होंगे देश के लिये दुःख, क्लेश तथा विनाश के कारण बन कर देश की नाव को मँझधार में ही डुबो देंगे। अतः मैं कह रहा था कि विशेषज्ञ उत्पन्न करो, परन्तु वे मानव हों शैतान के दूत नहीं।

कई शताब्दियों से यह देश पराधीन रहने के कारण सच्ची मानवता से वञ्चित हो गया है। पराधीन देश विचारहीन होते हैं। प्रायः यही दशा इस समय है। अतः सर्वाधिक तथा सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है ऐसे मानव के उत्पन्न करने की जो लिप्सा तथा लोभ से परे रह कर अपनी समस्त शक्ति से देश की नैया को दूसरे तट पर लगाने में समर्थ हो।

हमारा अनुभव यह बताता है कि इस समय जितने भी पदाधिकारी तथा अन्य विषयों के विशेषज्ञ हैं वे मानवता के गुणों से वंचित हैं। हां—यह दोष सभी पर नहीं लगाया जा सकता है क्यों कि इनमें ऐसे लोग भी हैं जो देश के हेतु अपने प्राणों को न्यौछावर करने को तत्पर रहते हैं परन्तु अनुमान सदा ही अधिकता में लगाया जाता है न्यूनता से नहीं। अधिकतर लोग ऐसे हैं जो स्वार्थ के गर्त में बुरी तरह से पड़े हुए हैं। तथा उस के सुधार की ओर न समाज ध्यान दे रहा है न सरकार ही।

यदि किसी जल के पात्र में छेद हो तो उसमें जल अधिक देर तक नहीं रह सकता। जब तक इन छेदों को बन्द नहीं किया जायेगा तब तक देश की समस्याओं का पूण समाधान होना असम्भव है!

इस प्रकार यदि देश अथवा राष्ट्र के चरित्र तथा आचार-विचार में दरारें पड़ी हों और जब तक इन दरारों को बन्द न किया जायेगा तब तक देश अथवा राष्ट्र की उन्नति असम्भव है हां—हम चाहे कितने ही विशेषज्ञ अपने देश में बनाते जायें परन्तु जब तक हमारे

चरित्र तथा आचरण में पड़े छेद बन्द नहीं होते तब तक उन्नति का स्वप्न लेना स्वयं को लज्जित करना है।

अब मैं एक अन्य दुर्बलता का वर्णन करने का प्रयास करूंगा जिससे हमारा चरित्र तथा आचरण उत्कृष्ट नहीं हो सकते और वह दुर्बलता है मातृशक्ति की ओर सहानुभूति का अभाव। किसी भी देश की प्रगति तथा समृद्धि के लिये जितनी सहायता मातृशक्ति अर्थात् स्त्री जाति दे सकती है उतनी पुरुष नहीं दे सकते। निःसन्देह नारी पुल तथा बाँध बाँधने वाली इंजीनियर न हो परन्तु वह मानव-निर्माण की इंजीनियर अवश्य होती है।

यदि आप इतिहास पर दृष्टि डालें तो जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सभी में यह महानता उन की माताओं के कारण उत्पन्न हुई है। स्त्री जाति ही किसी देश की सभ्यता तथा संस्कृति की संरक्षक होती है।

इतिहास साक्षी है कि एक समय था जब भारत की नारी चरित्रवान्, पतिव्रता तथा साध्वी होती थीं। विदेशी आक्रान्ताओं ने एक दो बार नहीं अपितु असंख्य बार इस देश में विध्वंस तथा अत्याचार किया। उन्होंने न केवल हमारे भौतिक धन को लूटा अपितु हमारे चरित्र एवं आचरण पर भी डाका डाला, परन्तु भारत की नारी अपने स्थान पर अडिग रही। भारतीय पुरुष तो स्थान स्थान पर फिसल गये, उन्होंने अपनी संस्कृति को त्याग दिया, अपनी सभ्यता को तिलांजलि दे दी। अपने धर्म से पृथक् हो गये, सच्चरित्रता तथा सदाचार से मुख मोड़ लिया, परन्तु स्त्री जाति ने इन सभी वस्तुओं को सुरक्षित रखा।

सती सीता, सावित्री, दमयंती, कुन्ती तथा अन्य अनगिनत देवियों ने चरित्र के गौरव को स्थिर रखा।

परन्तु खेद से कहना पड़ता है कि जिस चरित्र रूपी उपवन को

हमारी स्त्री जाति ने पुष्पित किया था वह अब उजड़ रहा है। बच्चों के चरित्र तथा आचार विचार का निर्माण करने वाली प्रथम निर्माता माता होती है। परन्तु इस निर्माता को हमने स्वयं ही सुमार्ग से हटा दिया है। जब भूमि ही अच्छी न रही तो उस से अच्छे पेड़-पौधे की आशा भी नहीं की जा सकती। जिस देश की मातृशक्ति मार्ग-भ्रष्ट हो जाये वहां सच्चे मानव कहां से उत्पन्न हो सकते हैं। आज जो दशा हम स्त्री जाति की बना रहे हैं, उसे देख कर कलेजा मुँह को आता है। हमारा कितना दुर्भाग्य है कि एक समय तो हमने इन को पैरों की जूती बनाया जिसका परिणाम यह निकला कि उस समय जूतियों में से जूती खाने वाले दास ही उत्पन्न हुए थे अब हम इन को मनोरंजन की वस्तु तथा भोग विलास का खिलौना बना रहे हैं कि उनकी कोख से कदाचारी, अवज्ञाकारी तथा दुश्चरित्र संतान उत्पन्न हो रही है।

जिस मार्ग पर हम अपनी मातृशक्ति को ले जा रहे हैं वह मार्ग हमने पश्चिम से जाना है। हालांकि पश्चिम के लोग स्वयं अपनी इस दुर्दशा पर दुःखी हो रहे हैं। यह वास्तविकता है कि अमरीका में सहस्त्रों कुमारी लड़कियां माताएं बन रही हैं जिनकी आयु १४ वर्ष से भी कम होती हैं। वहाँ प्रत्येक छठा बच्चा अनुचित होता है। वहाँ के लोग अपनी इस दुर्दशा को देख कर सोच रहे हैं कि इससे किस प्रकार छुटकारा पाया जाये परन्तु हम इसी पथ पर चल कर स्वयं अपने विनाश के साधन जुटा रहे हैं।

लड़के लड़कियों को खुले तौर पर मिलना किसी समय इसलिये आजमाया गया था कि इससे दो जातियों की कामेच्छा स्वयं ही शांत रहेगी तथा कामवासना की बुराइयां उत्पन्न नहीं होंगी परन्तु परिणाम इसके विपरीत ही निकला है।

स्वार्थपरता

यह सत्य है कि मानवता से वंचित व्यक्ति चाहे कितना ही शिक्षित तथा योग्य विशेषज्ञ हो, देश का उत्थान करने की बजाय उसे पतन की ओर ले जायेगा।

दो-तीन दोषों का वर्णन पहले किया जा चुका है जिनके कारण हम मानवता से नीचे गिर गये हैं तथा जिनसे हमारे चरित्र एवं आचार-विचार में पतन आ गया है। अब एक अन्य दोष को लिया जाता है जिसने हमारे भीतर चरित्रहीनता उत्पन्न कर दी है, वह है स्वार्थपरता।

अन्य दोषों की भांति यह दोष भी अधिकतर पश्चिमी शिक्षा तथा सभ्यता की ही देन है अन्यथा हमारी संस्कृति तो यह बतलाती है कि दूसरों के सुख में अपना सुख तथा दूसरों की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता समझो। तुम्हारा भोजन तुम्हें अविहित होगा यदि तुम्हारा कोई पड़ोसी भूखा सोता है। अपने शत्रु से भी सज्जनता से व्यवहार करो। स्व: नियंत्रण, सेवा तथा सहानुभूति से व्यवहार करना चाहिये तथा अपने जीवन के सभी सुखों को दूसरों के सुख के लिये बलिदान कर देना चाहिये। परन्तु आज हम इन समस्त आदेशों की अवज्ञा कर तथा सच्ची शिक्षा को भुला कर अपने निजी स्वार्थ तथा व्यक्तिगत लाभ को ही प्रमुखता देते हैं।

अब तो हमारी यह दशा है कि पड़ोसी चाहे भूख से मर जाये

तथा प्यास से प्राण त्याग दे परन्तु हमारा जीवन सुख पूर्वक बीतना चाहिये। देश तथा राष्ट्र जाये भाड़ में, हमारी तिजोरी में नकद नारायण आना चाहिये।

हमारे शास्त्रों ने सच्चे मानव के लिये जो नियम बताये हैं वे हमारे भीतर सच्ची मानवता की भावना उत्पन्न करने वाले हैं। शास्त्रों ने यह भी बताया है कि एक सच्चा मानव प्रत्येक प्राणी को प्रेम भरी दृष्टि से देखता है। वह आत्म शुद्धि करता है तथा दूसरोंकी परिस्थितियों को सुधारने का भरसक प्रयास करता है। वह अनाथों तथा विधवाओं से सहानुभूति रखता है। वह अपने से बड़ों का सम्मान करता है। युवकों से प्रेम रखता है। वह कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि किसी प्राणी को कष्ट नहीं देता तथा न घास एवं पेड़-पौधों को हानि पहुंचाता है। वह दूसरों के लाभ-हानि का ध्यान इस प्रकार रखता है जिस प्रकार अपने लाभ-हानि का। वह सदा बिना किसी निजी स्वार्थ के दूसरों का हित करने में तत्पर रहता है। वह किसी से घृणा, ईर्ष्या, द्वेष तथा वैर-भाव नहीं रखता। वह प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा के दर्शन कर किसी को बुरा नहीं समझता।

सच्चे मानव की महानता इसी में होती है कि वह बिना किसी परिचय के दूसरों को सुख देने का भरसक प्रयास करता है। जिस क्षुद्र परन्तु शुभ कार्य से दूसरे लोग भयभीत होते हैं तथा जिसे करने में उनमें हीन भावना की बू आती है अर्थात् जिस कार्य में हाथ डालने में वे अपना अपमान समझते हैं, उसे बिना किसी झिझक के वह किसी भी स्थान पर करने को तत्पर रहता है।

हमारी संस्कृति का मूलाधार तो यही पवित्र शिक्षा है जिसे समस्त देशों के महापुरुषों ने मानवता का मूलाधार स्वीकार किया है तथा उसे मनुष्य के लिये आवश्यक माना है क्यों कि मानव तो मानव कहलाने का अधिकारी तभी हो सकता है जब वह अपने अन्तः

करण में मानवता के गुणों को धारण किये हुए है अन्यथा मनुष्य तथा पशु में अन्तर ही क्या रह जाता है।

महात्मा कन्फूशियन्स ने भी मानवता के गुणों पर बड़ा बल दिया है। उन्होंने कहा है कि पहले मानव को जन्म दो, तत्पश्चात् शासन स्वयं ही सुधर जायेगा क्यों कि मानव के बिना कोई भी शासन पतन के गर्त से नहीं बच सकता। यही एक अनमोल सिद्धांत है जिसके आधार पर मैं निवेदन करता हूं कि यदि हम भारत की उन्नति के अभिलाषी हैं तथा भारत को अन्य प्रगतिशील देशों की पंक्ति में खड़ा करना चाहते हैं तो प्रथम मानव उत्पन्न करो परन्तु ऐसे मानव उत्पन्न करो जो स्वार्थ से दूर रहकर देश सेवा को ही अपना उद्देश्य समझें।

महात्मा कन्फूशियस का एक अन्य अनमोल कथन है कि यदि एक मंत्री अपने चरित्र को सुधार ले तो फिर शासन को सहायता देने के मार्ग में उसे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। परन्तु यदि वह अपना ही सुधार नहीं कर सकता तो किसी अन्य का सुधार करने में कैसे सफल होगा।

एक प्रसिद्ध कथा है कि सम्राट केकांग के राज्य में एक बार चोरों तथा डाकूओं की शक्ति बढ़ गई तो वह बड़ा चिंतत हुआ। अतः वह महात्मा कन्फूशियस के चरणों में जा बैठा तथा उनसे निवेदन किया कि "भगवन् मैं अपनी प्रजा को इन चोरों तथा डाकूओं के हाथों से कैसे सुरक्षित रखूं ?" इस प्रश्न का उत्तर दार्शनिक महात्मा ने इस प्रकार दिया कि 'हे राजन् ! पहले तुम स्वयं मानव बनो, स्वयं लोभ छोड़ दो तब वे लोग स्वयं ही चोरी डाके आदि का कार्य त्याग देंगे। अतः पहले अपना सुधार करो तभी देश का सुधार होगा।"

ईश्वर करे ! जब हमारे मंत्री तथा पुलिस के अधिकारी देश में हो रहे अपराधों पर विचार करें तो उन्हें महात्मा कन्फूशियस के

सुन्दर आदेशों को दृष्टि में रखें तथा उन आदेशों का पालन करने का प्रयास करें तभी वे इन समस्याओं को सुलझाने के योग्य होंगे।

महात्मा कन्फूशियस ने मानव जीवन के लिये तीन बातों पर बल दिया है। उनके कथनानुसार मानव जीवन की सफलता की आधार भूत यही तीन बातें हैं। बुद्धिमत्ता, मानवता तथा साहस।

उन्होंने आगे कहा है कि इन तीन गुणों में सबसे महत्त्वपूर्ण मानवता है क्यों कि जिस व्यक्ति में मानवता की भावना है वह अपनी शक्ति से दूसरों में शक्ति का संचार कर सकता है तथा अपनी सफलता में दूसरों की सफलता की अभिलाषा रखता है तथा उस ओर ध्यान भी देता है। जो व्यक्ति दूसरों के लाभ का विचार नहीं करते, वे मानब कहलाने के अधिकारी नहीं हो सकते।

एक अन्य स्थान पर इसी महापुरुष ने लिखा है कि जो व्यक्ति पूर्णमानव होना चाहता है वह केवल भोजन से अपनी भूख नहीं मिटाता तथा न सुन्दर घर में रह कर अपने सुख तथा ऐश्वर्य में तल्लीन रहता है। उसके जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य परहित करना है। उसे सदा इस बात की चिन्ता रहती है कि कहीं सच्चाई उसके हाथ से न छट जाये। वह भालाई की ओर कभी असावधान नहीं रहता।

अतः प्यारे पाठको ! जब तक भारत में इस प्रकार के मनुष्य उत्पन्न नहीं होते तब तक भारत ऊंचा नहीं उठ सकता। इस गुणों से सम्पन्न विशेषज्ञ ही भारत की उन्नति में सहायक हो सकते हैं। दुर्भाग्य से आधुनिक युग में हमारे स्वार्थ ने हमें मानवता के इन गुणों से पृथक् कर दिया है।

भारतीय संस्कृति का एक माननीय आदर्श है—'प्रत्येक सभी के लिये तथा सभी प्रत्येक के लिये' इस अमूल्य सिद्धांत को हमने विस्मृत कर दिया है। इसी लिये आज हम चारित्रिक पतन के शिकार हो गये हैं।

हमारी संस्कृति के सम्बन्ध में अन्य देशों के वैज्ञानों ने जो अपना मत दिया है उस पर हम अभिमान करते हैं परन्तु केवल सिद्धांतों की श्रेष्ठता तो पर्याप्त नहीं है। जब तक हम उन सिद्धांतों का पालन नहीं करते तब तक उनका कोई महत्त्व नहीं है।

निस्सन्देह हमारी संस्कृति के सिद्धांत सराहनीय है परन्तु जब तक हम उन सिद्धांतों का पालन नहीं करते तब तक हम अपनी संस्कृति तथा उसके सिद्धांतों को जीवित नहीं रख सकते।

पश्चिमी विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्रो० जोन मैकन्शरी नामक एक ईसाई सज्जन का कथन है "हिन्दू धर्म का अत्यधिक आकर्षक पहलू गृहस्थी, प्रेम तथा सेवा के रूप में विद्यमान हैं। माता पिता तथा संतान कर्तव्य, भाई बहन का परस्पर स्नेह तथा समाज के विभिन्न व्यक्तियों का अपने निजि लाभ को समस्ति जाति तथा वर्ग के लाभ से सम्बद्ध रखने का विचार हिन्दू धर्म का प्रथम सिद्धांत है तथा इस प्रकार हिन्दू धर्म ने विश्व व्यापी प्रेम के लिये एक सुन्दर शिक्षा केन्द्र स्थापित किया है।"

हम आज इस इस बात की शेखी बघारते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धांत उत्तम हैं परन्तु इन सिद्धांतों की महत्ता हमारे लिये केवल इसी रूप में कुछ स्थान रख सकती है यदि हम उन्हें कार्यान्वित करें।

चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों में सर्वश्रेष्ठ नुस्खे तब तक किसी रोग का विनाश नहीं कर सकते जब तक उन को प्रयोग में न लाया जाये। हम भी उस अंधे आदमी की भावना में आ जाते हैं जो यह कहता है कि मेरी जेब में एक ऐसा सुर्मा है जो अंधों को दृष्टि प्रदान करता है परन्तु वह इस सुर्मा का प्रयोग कर न स्वयं इससे लाभ उठाता है तथा न ही इसे सर्वोत्तम सिद्ध करने का प्रमाण दे सकता है।

सुशीलता तथा सत्यता

राष्ट्र तथा देश भी शरीर की भाँति होता है। शरीर के भीतर कई प्रकार के अंग होते हैं। उदाहरणत: अस्थियाँ, मांस, नसें, केश, चर्बी तथा अन्य अंग जैसे हाथ, पैर, नाक, कान, वाणी आदि। इस प्रकार शरीर इन सभी अंगों से मिलकर बना हुआ है।

एक प्रश्न उठता है कि शरीर के भीतर सर्वाधिक महत्त्वशाली तत्त्व तथा अंग कौन सा है? आपका उत्तर होगा 'हृदय'। कदापि नहीं। हृदय भी अब परिवर्तित किये जा सकते हैं। सड़ा-गला हृदय निकाल कर नया हृदय डाला जा सकता है तत्पश्चात् आप 'रक्त' को सर्वाधिक महत्त्व देंगे। परन्तु यह भी नहीं है। रक्त भी बाहर से शरीर में डाला तथा निकाला जा सकता है। अब यह बात विचारणीय है कि कौन सा सर्वाधिक महत्त्वशाली तथा आवश्यक तत्त्व तथा अंग है जिस की शरीर को अत्यधिक आवश्यकता है अर्थात् जिसके बिना शरीर अपने अस्तित्व को स्थिर नहीं रख सकता।

उपनिषदों में एक कथा आती है कि एक बार शरीर के सभी अंगों में इस बात पर वाद विवाद उठ खड़ा हुआ कि शरीर के लिये सर्वाधिक आवश्यक अंग कौन सा है? सब अपनी अपनी हांक रहे थे। जब वे किसी निर्णय पर न पहुंच सके तो एक महर्षि के पास

इसके सम्बन्ध में निर्णय कराने गये। महर्षि ने कहा कि इसका निर्णय करना कोई कठिन कार्य नहीं है। तुम सभी क्रमानुसार शरीर को त्याग कर चलते जाओ तथा फिर देखो कि किसके चले जाने पर शरीर का अस्तित्व खतरे में पड़ता है। अतः कान, नाक, वाणी, नेत्र, हाथ, पांव आदि सभी क्रमानुसार शरीर को त्याग पृथक् होते गये परन्तु शरीर पूर्ववत् ही स्थिर रहा। अतः सबने अनुभव किया कि हम व्यर्थ ही अपने को शरीर का सर्वाधिक आवश्यक अंग समझते थे। अंत में प्राण की बारी आयी और वे बाहर जाने लगे तो उनके पृथक् होने से शेष सभी अंग तथा तत्व भी सिकुड़ने लगे तथा जब उनका अस्तित्व समाप्त होने लगा तब वे सब शोर मचाने लगे कि भइया ! तुम बाहर न जाओ अन्यथा हमारा अस्तित्व खतरे में है।❀ इस प्रकार महर्षि ने प्रयोग द्वारा शरीर के सभी अंगों को दिखा दिया कि शरीर का सर्वाधिक आवश्यक तत्व है प्राण। यह मनुष्य में गर्भावस्था से लेकर अंतिम सांस तक स्थिर रहता है। वृद्धावस्था में शेष सभी अंग निर्बल तथा निकम्मे हो जाते हैं परन्तु जब तक प्राण विद्यमान रहता है शरीर का अस्तित्व बना रहता है तथा शेष सभी अंगों का अभाव शरीर के अस्तित्व को समाप्त नहीं कर सकता।

❀ ते हेमे प्राणा अहँ श्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुस्तद्धोचु को नो वसिष्ठ इति तद्धोवाच यस्मिन् व उत्क्रांत इदँ शरीरं पापीयो मन्यते स वो वसिष्ठ इति ॥..

अथ ह प्राण उत्क्रमिष्यन् यथा महासुहय: सैन्धवः पड्वी शशङ्कून् संवृहेदेवं हैवेमान् प्राणान् संववह ते होचुर्मा भगव उत्क्रमीर्न वै शक्ष्यामस्त्वदृते जीवितुमिति तस्यो मे बलिं कुरुतेति तथेति ॥

बृहदारण्यकोपनिषद् ॥६॥१॥८-१३॥

प्राण के रहते हुए अन्य सभी अंग तथा तत्व नितांत स्वस्थ एवं शक्तिशाली होते हैं परन्तु प्राण के चले जाने पर शरीर तो अस्तित्वहीन हो जाता है परन्तु उसके साथ सभी अंगों तथा तत्वों का भी विनाश हो जाता है।

मैंने प्रारम्भ में निवेदन किया है कि राष्ट्र भी शरीर की भाँति होता है। जैसे एक शरीर में विभिन्न अंग होते हैं तथा उनके अंगों के समूह का नाम ही शरीर है, उसी प्रकार राष्ट्र के भी विभिन्न अंग होते हैं तथा उन अंगों के समूह का नाम ही राष्ट्र होता है। उदाहरणतः राष्ट्र में धनोपार्जन करने वाले, कृषक, शिल्पी, श्रमिक, वैज्ञानिक, अध्यापक, डाक्टर, इंजीनियर, स्कूल, कॉलेज, सैनिक, पदाधिकारी, शासक तथा अस्त्र शस्त्र, शिल्पकला एवं खेती बाड़ी के उपकरणों आदि सभी की आवश्यता होती है तथा इन सब के होने से ही राष्ट्र कहा जाता है। परन्तु यह सब बात विचारणीय है कि इनमें सबसे अधिक आवश्यक वस्तु क्या है ? यह तो पहले कहा गया है कि आवश्यकता इन सभी की है। प्रत्येक की अपने स्थान पर अपनी महत्ता होती है। प्रत्येक की विद्यमानता राष्ट्र को वांछित है। परन्तु प्रश्न उठता है कि वह कौन सा तत्व है जिसके न रहने से राष्ट्र के अस्तित्व को खतरा पड़ सकता है अर्थात् जिस प्रकार शरीर में प्राण के बिना शरीर का अस्तित्व स्थिर नहीं रह सकता उसी प्रकार राष्ट्र में प्राण की गणना में आने वाला कौन सा अंग है ?

इसी सम्बन्ध में प्राण का पद प्राप्त करने वाली महत्वशाली वस्तु है मानवता। शेष सभी अंगों के होते हुए भी मानवता के बिना राष्ट्र विनाश की ओर जाता है।

स्वतंत्र भारत में इस वस्तु की अत्यधिक न्यूनता है तथा यह न्यूनता दिन प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है क्यों कि न तो इस ओर

सरकार ध्यान दे रही है तथा न समाज। अतः मैं इस खतरे की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं कि यदि इस वातावरण को सुधारा न गया तथा उस पर नियंत्रण न रखा गया अर्थात् यदि पाशविक कार्यों को समाप्त कर मानवता के साधनों को न अपनाया गया तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश की स्वतंत्रता का स्थिर रहना भयपूर्ण है।

हमारी संस्कृति के दो मौलिक सिद्धान्त हैं जिनको अनुकरण कर हमारे पूर्वज सदा प्रसन्न चित्त तथा आनंदित रहे हैं। उन्हीं दो सिद्धांतों से मुख मोड़ कर हम दुःखी तथा पीड़ित हो रहे हैं। वे दो सिद्धांत हैं—सुशीलता तथा सत्यता।

हमारे धर्मशास्त्रों में सत्य की बड़ी महिमा गायी गई है। सत्य पर आरूढ़ हो कर मर्यादा पुरोषत्तम भगवान् राम ने राज्य तथा ऐश्वर्य को ठुकरा कर १४ वर्ष के लिये वनवास को प्रस्थान किया था।

महाभारत में एक कथा है कि तराजू के एक पलड़े में यदि सत्य रखा जाये तथा दूसरे में अन्य सुकर्म तथा गुण तो भी सत्य का पलड़ा भारी रहेगा। इसी लिये तो कहा गया है—

'सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप'

रामायण की नींव ही सत्यता पर आधारित है। धर्मराज महाराज युधिष्ठिर का सम्मान तथा महत्व इसी लिये है कि उन्होंने सारी आयु असत्य नहीं बोला।

हमारा धर्म सत्यता को इतनी महत्ता देता है कि मृत व्यक्ति की

अर्थी के साथ भी यही शब्द बोले जाते हैं - 'राम नाम सत है, सत बोलो गत है।

तथ्य यह है कि सत्यता ही सच्चरित्रता रूपी सुन्दर भवन की नींव है। सत्य के बिना मानवजीवन मिट्टी से भीतुच्छ है। सत्य के बिना समाज में छल, कपट, धोखा तथा व्यभिचार आदि पाप बढ़ जाते हैं।

जहां सत्यता का सम्मान नहीं होता वहां आपसी फूट फैल जाती है तथा सम्पन्नता नहीं रहती। शासन का आधार ही सत्यता है। जिस देश के शासक सत्यवादी न हों उस शासन के दौरान देश उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। जिस देश के निवासी सुमार्ग पर न चलें वहाँ चरित्रहीनता का होना अनिवार्य है।

यह एक प्रसिद्ध उक्ति है कि सत्य को मनुष्य तभी छोड़ता है जब वह स्वार्थ के पंजे में फंस जाता है। जब जनता सत्यता का आँचल छोड़ देती है तो देश अवनति के गर्त में जा गिरता है। असत्यता के मार्ग पर चलने के कारण दण्ड के रूप में पराधीनता आदि विपत्तियां देश पर आ पड़ती हैं तथा वे विनाश का कारण बनती हैं।

इतिहास साक्षी है कि जो भीरु जाति सत्यता से दूर हो जाती है तथा झूठ और छल से प्रेम का आडम्बर करती है, वह कभी भी कोई सराहनीय कार्य नहीं कर सकती।

हमारा धर्म हमें शिक्षा देता है कि जिस प्रकार एक नवयुवक के मुख की आभा अथवा कांति उसकी स्वस्थता तथा सौन्दर्य को प्रकाशित करती है उसी प्रकार सत्यता एक जाति की स्वस्थता तथा शौर्य का प्रकाशवान रूप है। इसके विपरीत असत्यता एक निर्बलता तथा रोग का लक्षण है।

अतः दुश्चरित्रता के गर्त से बाहर होने के लिये सत्य से प्रेम करना तथा असत्य को त्याग देना अनिवार्य है परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है यदि शासक तथा शासित दोनों स्वार्थ से उठ कर उदग्र स्थल पर पहुंच जायें। निष्कर्ष रूप से मैं यही कहूंगा कि हम मानवता के आभूषणों से अपना साज-शृंगार कर सही अर्थों में मानव बनें।

जैसा अन्न वैसा मन

यह एक प्रसिद्ध सिद्धांत है कि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों की कठपुतली होता है अर्थात् जो व्यक्ति जिस प्रकार सोचता है वैसा ही बन जाता है। जब हम यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति सुशील है तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि उसके विचार शुद्ध हैं। इस के विपरीत जब हम किसी व्यक्ति को अच्छा नहीं कहते तो इसका यह अर्थ है कि उसके विचार अशुद्ध हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य का अच्छा अथवा बुरा होना उस के विचारों पर आधारित होता है। अतः सभी धर्मशास्त्रों ने विचार-शुद्धि पर अधिक बल दिया है। यह असम्भव है कि एक व्यक्ति के विचार अपवित्र हों और वह शीलवान् तथा चरित्रवान् कहलाये। इसी लिये एक उर्दू कवि ने कहा है —

गिरते हैं ख्याल तो गिरता है आदमी।
जिस ने उन्हें सभाल लिया वह सभल गया॥

इस सम्बंध में मैं अभी तक यही कहता आ रहा हूं कि भारत को सर्वाधिक आवश्यकता सच्चे मानव की है तथा सच्चे मानव की संक्षेप में यही परिभाषा है कि सच्चा मानव वही है जिस के विचार शुद्ध तथा पवित्र हों।

मानवता का सब से बड़ा शत्रु है स्वार्थ परन्तु अपवित्र तथा नीच विचार ही स्वार्थ के जन्मदाता हैं। जिस व्यक्ति के विचारों में पवित्रता तथा विशदता होती है वह कभी स्वार्थी नहीं हो सकता।

भारत में इस समय सच्चे मानव का यद्यपि अभाव नहीं है तो भी अल्पता अधिक मात्रा में है। इस वास्तविकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि आज भारत को स्वतंत्र हुए अट्ठारह वर्ष से ऊपर हो गये हैं तो इस में कोई कारण नहीं कि कम से कम प्रत्येक व्यक्ति को पेट भर रोटी तथा तन ढांकने को कपड़ा मिलने में कोई कठिनाई न हो। परन्तु तथ्य यह है कि आज निर्धन अधिक निर्धन होता जा रहा है तथा उसके लिये रोटी कपड़ा प्राप्त करना अति कठिन हो गया है। कुछ विभागों में उन्नति अवश्य हुई है परन्तु इसका लाभ विशेष व्यक्तियों को प्राप्त हुआ है। निर्धन बेचारा वैसे का वैसा ही रहा है। जितनी उन्नति आज हुई है उस से भी अधिक उन्नति होती यदि धन कमाने वालों के विचारों में अपवित्रता न होती। जो विशेषज्ञ भारत को उन्नति के मार्ग में ले जाने के लिये तत्पर रहे हैं, उन के हृदय में देशसेवा की भावना होती तथा उन्हें अपने निर्धन भाइयों के प्रति सहानुभूति होती तो कोई कारण नहीं कि भारत उन्नति के शिखर पर न पहुंचा होता।

भारत में सच्चे मानवों की कमी साधारण मात्रा में नहीं अपितु अधिक मात्रा में है। हम ऐसे कह सकते हैं कि ऐसे मानवों की संख्या आटा में नमक के समान भी नहीं है। इस का कारण यही है कि विचारों में गिरावट आ गई है। यह पतन क्यों हुआ है ? इस के कुछ कारण पहले बताये जा चुके हैं। एक अन्य कारण भी है विचारों में जहाँ मानवता के मूलभूत सिद्धान्तों में असावधानी करने का

प्रभाव पड़ता है तथा जहां साहित्य, मनोरंजन तथा माया दास बनने का बहुत सा प्रभाव पड़ता है वहां बहुत सा प्रभाव खाने पीने की वस्तुओं तथा खाने पीने के ढंग का भी पड़ता है।

एक प्रसिद्ध कहावत है कि जैसा अन्न वैसा मन। हमारी संस्कृति ने खाने पीने के सम्बंध में जो नियम स्थापित किये हैं, पश्चिमी सभ्यता तथा शिक्षा ने इन पर भी अपना प्रभाव डाला है।

विचारों में अपवित्रता लाने वाली जिन खाद्य वस्तुओं का प्रयोग पाश्चात्य देशों में किया जाता है जिसे अब वे लोग अपने अनुभवों के आधार पर हानिकारक स्वीकार करने लगे हैं परन्तु हम इस पर विचार न कर सात्विक भोजन सम्बंधी वस्तुओं को त्याग कर राजसिक तथा तामसिक वस्तुओं को खा पीकर अपनी अंतरात्मा तथा मस्तिष्क में विकार ला रहे हैं।

हमारे शास्त्रों ने खाने पीने की वस्तुओं के सम्बंध में जो आदेश दिया है उन्हें न बता कर मैं एक पाश्चात्य डाक्टर को उद्धृत करना चाहता हूँ जिस से यह ज्ञात हो कि आज कल हमारे प्रयोग में आने वाली खाद्य वस्तुएं कितनी हानिकारक हैं तथा हमारे मन तथा मस्तिष्क पर उन का कितना गहन प्रभाव पड़ता है।

अमरीका के प्रसिद्ध तथा अनुभवी डाक्टर श्री जी० एम० पीलर ने अपनी पुस्तक 'हम ९० वर्ष तक युवक किस प्रकार रह सकते हैं' में लिखा है—"आप प्रश्न करेंगे कि हमें क्या खाना चाहिये तथा क्या न खाना चाहिये ? इस का उत्तर यही होगा कि वर्जित खाद्य वस्तुओं में प्रत्येक प्रकार का मांस अर्थात भेड़, बकरी, सूअर, कुक्कुर, मछली तथा अन्य पशुओं का मांस न खाओ, चर्बी न खाओ

ग्रचार, मिर्च, ग्रधिक गर्म मसाले, उन्मादक वस्तुएं ग्रर्थात् मदिरा, कहवा तथा चाय से भी परहेज करो।

खाने की वस्तुग्रों में प्रत्येक प्रकार की बुद्धिवर्धक वस्तुएं ग्रर्था त् ग्रन्न सब्जियाँ तथा फल खाने चाहियें। मलाई, मक्खन तथा ताज़ा पनीर का प्रयोग करा। दूध बलवर्धक खाद्य वस्तु तथा सर्वोत्तम खुराक है।

स्मरण रखो। संसार में परस्पर संघर्ष तथा युद्ध की समाप्ति उस समय तक नहीं होगी जब तक लोग इन निर्दोष पशुग्रों की हत्या करना तथा नरभक्षकों की भांति इन का मांस खाना नहीं छोड़ेंगे।

यह सत्य है कि मांस इतना स्वास्थ्यवर्धक नहीं है जितना कामोत्पादक एवं उत्तेजक। इस के इच्छुक ग्रधिकतर सिंह, चीता, लगड़बग्घा, बिल्लियाँ, कुत्ते तथा कौवे ग्रादि होते हैं।

कई लोगों ने इस बात पर ग्रापत्ति की है कि हमें जो कुछ भाता है ग्रर्थात् स्वादिष्ट लगता है, हम वही खाते हैं। निस्सन्देह सूग्रर भी ऐसा ही करते हैं परन्तु समझदार मनुष्य, जिस को ईश्वर ने बुद्धि तथा हृदयरूपी रत्न प्रदान किये हैं, उस वस्तु को खायेंगे जो स्वास्थ्य वर्धक तथा पाचनशक्ति में वृद्धि करने वाले होंगे। यह हमारे लिये ग्रनिवार्य है कि ग्रपने स्वाद तथा भूख की पूर्ति ग्रपनी भलाई तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से कर तथा उन्हें ग्रपनी शक्ति एवं शरीर विज्ञान के ग्रनुसार कार्य में लायें।

जैसन नामक एक व्यक्ति ने एक रीछ पाल रखा था जिसे वह रोटी तथा फल खिलाता था। ग्रतः वह बड़ा गंभीर तथा सहन-

शील पशु था, परन्तु जब कुछ सप्ताह के लिये उस व्यक्ति ने उस रीछ को कच्चा मांस खिलाना प्रारम्भ किया तो वह बड़ा भयानक एव क्रूर स्वभाव का पशु बन गया। मनुष्य हो अथवा पशु, वे जिस प्रकार का भोजन करेंगे उनका स्वभाव भी वैसा ही बन जायेगा। उत्तरी क्षेत्रों के वनचारी सुन्दर मृग जो न मांस खाते हैं, न चर्बी तथा न तेल पीते हैं वे न केवल शरद् ऋतु को अधिक सहन कर सकते हैं अपितु दौड़ में दक्षिणी क्षेत्रों के मांसाहारी चीतों से भी आगे निकल जाते हैं।

लंका के बौद्ध लोग अधिकतर चावल तथा नारियल खाकर अपना जोवन व्यतीत करते हैं। इसी लिये वे शांतिप्रिय होते हैं। अमरीका में शेकर जाति के सभी लोग शाकाहारी हैं परन्तु जितनी लम्बी आयु उन की होती है उतनी इस पृथ्वी तल पर बहुत कम लोगों की होती है।

इस विचारधारा का अनुभव लेने के लिये दो सगे भाइयों ने लम्बी पदयात्रा की। वे लोस्टन से चल कर अमरीका भर में पैदल घूमे। इन में से एक मांसाहारी था तथा दूसरा शाकाहारी। जब वे अतलांतिक सागर के नगर लॉस में पहुचे तो ज्ञात हुआ कि शाकाहारी का वजन चार सेर बढ़ गया था तथा उसका स्वास्थ्य भी ठीक था। परन्तु मांसाहारी भाई का वज़न बढ़ना तो एक ओर रहा, उसका स्वास्थ्य भी गिर गया था। अंत में थक कर जब वे दोनों सिकंदरिया होटल में गये तो उन्हों ने स्वीकार किया कि स्वास्थ्य, शक्ति तथा सहनशीलता के लिये मांस की अपेक्षा शाक प्रत्येक प्रकार से उत्तम भोजन है। शाक न केवल मांस की अपेक्षा सस्ती खाद्य वस्तु है अपितु आध्यात्मिक तथा चारित्रिक पहलुओं में भी मांसाहार से अधिक उपयोगी है।

शुद्ध विचारक तथा दूरदर्शी लोग अपने शरीर सम्बन्धी व्यवस्था की आवश्यकता तथा इच्छाओं पर नियंत्रण रख सोच-विचार कर इस प्रकार की वस्तुएं खाते हैं जो शरीर के विकास को पूर्ण कर सकें। इन का भोजन अन्न, फल, दूध, चावल, जौ, लोबिया तथा इसी प्रकार के पके हुए बेर होते है जिनकी खेतों तथा वाटिकाओं में उपज होती है।

प्रत्येक प्रकार के मांस की अपेक्षा अन्न, दाल तथा वनस्पति के तत्त्वों से यह आश्चर्यजनक मानव शरीर एक विचारशील मन से प्रभावित होकर, अधिक पवित्र, अधिक दृढ़ तथा अधिक सहनशील रूप धारण कर सकता है।"

मित्रो! यह एक चिराभ्यस्त अमरीकन डाक्टर के चिरकाल से हुए अनुभवों का सार है। अब ज़रा आप इस ओर अपनी दृष्टि डालें तथा देखें कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी खाद्य अवस्था में क्या अन्तर आया है? विशेषतया मैं ने लुधियाना में अपने नेत्रों से देखा है तथा अन्यत्र जिस स्थान पर गया हूं, यही सुना है कि प्रत्येक नगर में जहाँ मांसविक्रेताओं की कुछ ही दुकानें होती थीं, आज कोई बाज़ार या कूचा ऐसा नहीं रहा जहां यह उत्तेजक तथा अशान्ति जनक भावनाओं को उत्पन्न करने वाली वस्तुओं की बिक्री न होती हो। ऐसी दशा में पवित्र, शाँतिप्रिय तथा देशभक्ति के शुद्ध विचार कहाँ से उत्पन्न होंगे तथा देश प्रगति के पथ पर कैसे जा सकेगा।

ऐ देशवासियो! ज़रा इस ओर अपना ध्यान दो तथा अपने प्रिय भारत को सही अर्थों में मानवों की नगरी बना दो। यही मेरा निवेदन है आप लोगों से।

— — — —

।। भजन ।।

अजब हैरान हूं भगवन्, तुम्हें क्योंकर रिझाऊं मैं।
कोई वस्तु नहीं ऐसी, जिसे सेवा में लाऊँ मैं।। अजब० ।।

करें किस तौर आवाहन कि, तुम मौजूद हो रह जाँ।
निरादर है बुलाने को अगर घण्टा बजाऊँ मैं।। अजब० ।।

तुम्हीं हो मूर्ति में भी, तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान् पर भगवान् को क्यों कर चढ़ाऊँ मैं।। अजब० ।।

लगाना भोग कुछ तुमको, यह एक अपमान करना हैं।
खिलाता है जो सब जग को, उसे क्योंकर खिलाऊँ मैं।। अजब० ।।

तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं, सूरज चांद और तारे।
महा अन्धेर है कैसे, तुम्हें दीपक दिखाऊँ मैं।। अजब० ।।

भुजायें हैं न गर्दन है न सीना है न पेशानी।
तुम हो निर्लेप नारायण ! कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं। अजब० ।।

ओ३म्

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त

ओं सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥

हे प्रभो तुम शक्ति शाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिये धन वृष्टि को॥

ओं संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जनाना उपासते॥ २॥

प्रेम से मिल कर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्तव्य के मानी बनो॥

ओं समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥

हों विचार समान सब के चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों॥

ओं समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ४॥

हों सभी के दिल तथा सङ्कल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा॥

आर्यसमाज के नियम

–सब सत्य विद्या, और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी को उपासना करनी योग्य है ।

–वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

–सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

–सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए ।

–संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है,— अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

–सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०–सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे द्वारा प्रक

प्राप्य साहित्य

मूल्

भगवान् कृष्ण (ब्र० जगदीश विद्याथ

नभ के तारे (प्रो० रमेशकुमार 'लो' एम.

ज्ञान-दीपिका (श्री रामकृष्ण भार

विश्व का प्रथम राष्ट्र-गीत (पुरस्कृत) (श्री गणेशदत्त श

स्वर्ण-पथ (ब्र० जगदीश विद्यार्थी

सत्सङ्ग-सुधा (सङ्कलित

पञ्च-महायज्ञ (प्रो०रमेशकुमार 'लो' एम. ए

उपदेश-मञ्जरी (महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैदिक भक्ति-स्तोत्र (स्व० पं० बुद्धदेव ज

वैदिक धर्म (स्व० प० इंद्र विद्यावाचस्प

गणेश (श्री रामरतन एडव

आर्यसमाज के लोकोपकारी कार्य (श्री मित्रसेन आर्य

यक्ष युधिष्ठिर-प्रश्नोत्तरी (स्व० पं० बुद्धदेव जी मी

भारत की महान् आवश्यकता (श्री काशीराम चा

जीवन-यात्रा (ब्र० जगदीश विद्यार्थी)

गीत बावनी (श्री धर्मपाल कपूर)